अनुक्रमणिका

विषय-सूची	पृष्ठ- संख्या
१.श्रीधामोपासना का आधार 'महदाश्रय'	०३
२.'ब्रजभूमि' का संक्षिप्त इतिहास	०५
३.'वास्तविक ब्रजाराधना' में बाधक 'भेदबुद्धि'	१५
४.श्रीयुगललीलारस से अभिसिंचित ब्रजभूमि	१८
५.लता-वृक्षों द्वारा युगल सरकार की आराधना	२१
६.श्रीकृष्णलीला की सर्वव्यापकता	२३
७.नित्यधाम से श्रेष्ठ अवतरितधाम	२८
८.श्रीकृष्णलीला के परम सुजान 'संशयशून्य जन'	३१

सबसौं सुन्दर है बरसानों ब्रज में राधा रानी कौ ||

जहाँ बिराजें राधा रानी
जाकी श्याम करैं अगवानी
महिमा वेदन हू नाय जानी
पर्वत ऊपर मन्दिर चमकै सब जग जानी कौ |
खोर साँकरी बड़ी रसीली
दधि लै चलीं कुंवरि गरबीली
सखियाँ संग में बहुत हठीली
आगे मोहन गैल रोक दियौ रूप लुभानी कौ |
दैजा दान कुंवरि रसिया कौ
पीत पिछोरी कटि कसिया कौ
कुँवरि हँसी लखि मन बसिया कौ
घूँघट में ते छीन लियौ मन वा मनमानी कौ |
गहवर वन की लता-पतन में
बिहरें राधा मोहन वन में
फूले-फूले तन में मन में
बड़े-बड़े सुर नर मुनि तरसैं या रजधानी कौ ||

- पूज्यश्री बाबा महाराज कृत

|| राधे किशोरी दया करो ||

हमसे दीन न कोई जग में,
बान दया की तनक ढरो |
सदा ढरी दीनन पै श्यामा,
यह विश्वास जो मनहि खरो |
विषम विषयविष ज्वालमाल में,
विविध ताप तापनि जु जरो |
दीनन हित अवतरी जगत में,
दीनपालिनी हिय विचरो |
दास तुम्हारो आस और की,
हरो विमुख गति को झगरो |
कबहूँ तो करुणा करोगी श्यामा,
यही आस ते द्वार पर्‌यो |

संरक्षक- श्रीराधामानबिहारीलाल

प्रकाशक – राधाकान्त शास्त्री, मानमंदिर सेवा संस्थान,
गह्वरवन बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)
(Website :www.maanmandir.org)
(E-mail :ms@maanmandir.org)
mob. : 9927338666, 9837679558

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप प्रातःकालीन सत्संग का ८:०० से ९:०० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:०० से ७:३० बजे तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं |

परम पूज्यश्री रमेश बाबा महाराज जी द्वारा सम्पूर्ण भारत को आह्वान -

"मजदूर से राष्ट्रपति और झोंपड़ी से महल तक रहने वाला प्रत्येक भारतवासी विश्वकल्याण के लिए गौ-सेवा-यज्ञ में भाग ले |"

*** योजना ***

अपनी आय से १ रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन निकाले व मासिक, त्रेमासिक, अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक रूप से इकट्ठा किया हुआ सेवा द्रव्य किसी विश्वसनीय गौ सेवा प्रकल्प को दान कर गौ-रक्षा कार्य में सहभागी बन अनंत पुण्य का लाभ लें | हिन्दू शास्त्रों में अंश मात्र गौ सेवा की भी बड़ी महिमा का वर्णन किया गया है |

विशेष:- इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्-कृपा के पात्र बनें | हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है –

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ | जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि || (श्रीमद्भागवत३/७/४१)

अर्थ:- भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म-मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है, समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं हो सकता |

प्रकाशकीय

ब्रजरजाभिषिक्त, ब्रजगौरव व 'पद्मश्री' विभूषित परमाराध्य संत प्रवर श्रीरमेश बाबाजी जिन्होंने ब्रजवसुन्धरा को ही अपनी आराधना का अवलम्ब बनाकर अखण्ड ब्रजवास करते हुए ब्रजसेवा व ब्रजवासियों को कृष्णरूप मानकर न केवल स्वयं को बल्कि लाखों-करोड़ों की आस्था का विषय 'ब्रजधाम' को बनाया | ब्रज के वन, सरोवर, दिव्य पर्वत व गौमाता के संवर्द्धन-संरक्षण में अपने अविस्मरणीय योगदान से सभी को कृतार्थ किया है | गाँव-गाँव में 'हरिनाम प्रभातफेरी' के माध्यम से सभी ब्रजवासियों की सबसे बड़ी सेवा उनके द्वारा हो रही है | इसके अतिरिक्त निःशुल्क ब्रजयात्रा १९८८ से वार्षिकरूप से कराकर लोक-कल्याण का अनूठा कार्य किया है | श्रीराधारानी ब्रजयात्रा बड़ी दिव्य है; समग्र राष्ट्र ही नहीं, देश-विदेश के कितने ही हजार यात्री प्रतिवर्ष यह यात्रा करने लगे | समुद्रवत उमड़ती हुई यात्रियों की भीड़ बड़ी ही मनमोहक लगती है | बाबा ने ब्रज के वास्तविक स्वरूप को समस्त ब्रजभक्तों के समक्ष प्रस्तुत किया, इसके लिये बड़ा ही अनुसंधानात्मक कार्य उन्होंने कराया और वृहद् ग्रन्थ "रसीली ब्रजयात्रा" अंतर्राष्ट्रीय भागवतवक्त्री ब्रजवासिनी देवी मुरलिकाजी द्वारा प्रस्तुत किया गया | लोग ब्रजभूमि को ससीम बनाने लगे परन्तु क्या असीम की पावन अवनि को कोई किसी सीमा में बाँध सकता है ? श्रीबाबामहाराज ने यही कारण था कि परिक्रमा को दो रूपों में प्रारम्भ कराया – प्रथम तो अंतर्वेदी और दूसरी बहिर्वेदी | विशेष रूप से मथुरा, वृन्दावन, गोवर्द्धन, गोकुल, बल्देव, नंदगाँव, बरसाना तक ही लोग सीमित हो जाते हैं लेकिन बाबा ने भारी खोज-पड़ताल कराके ऐतिहासिक व पौराणिक आधारों पर ब्रज की सीमा का स्वरूप भी सामने रखा, जिसके अनुसार भगवान श्रीकृष्ण का लीलाक्षेत्र ब्रजमण्डल कभी सूरसेन जनपद के नाम से जाना जाता था, कालान्तर में जिसका नाम 'मथुरा' हुआ | सातवीं शती (शताब्दी) में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने मथुरा राज्य की सीमा में मथुरा, आगरा, भरतपुर, धौलपुर, मध्यप्रदेश के मुरैना और भिण्ड तथा ग्वालियर का २६ अक्षांश से ऊपर का भाग, आगरा, इटावा, मैनपुरी, एटा, फर्रुखाबाद, अलीगढ़, बुलंदशहर एवं गुड़गाँव की सोननदी तक की सीमा का उल्लेख किया है; इतनी व्यापक परिधि में तो नहीं परन्तु फिर भी बहुत कुछ अंशों में बहिर्वेदी परिक्रमा भी महाराज जी के द्वारा कराई जाती है, जो इस वर्ष हो रही है | राधारानी ब्रजयात्रा हर प्रकार से एक अनौखी यात्रा है जिसमें लघुरूप में सम्पूर्ण भारत के दर्शन होते हैं | लगभग १५ हजार यात्रियों को भोजन प्रसाद नित्य बरसाना से बनकर प्रत्येक पड़ाव स्थल पर भेजा जाता है | सतत् हरिनाम संकीर्तन इस यात्रा की बड़ी विशेषता है | इसके अतिरिक्त कई-कई किलोमीटर लम्बी पंक्ति तथा सभी यात्रियों को पैदल चलते हुए भी हरिनाम श्रवण का निरंतर सौभाग्य प्राप्त होता है | संध्या समय दृष्ट स्थलों का माहात्म्य निरूपण किया जाता है | ब्रज परिक्रमा चौरासी लाख योनियों के समस्त कल्मषों को धोकर प्रत्येक यात्री को परम पावन बनाकर श्रीकृष्ण रस से उसे सराबोर कर देती है | हमारे पाठक भी you tube (यू.ट्यूब) पर प्रातः ६ से ११ बजे तक लाइव प्रसारण देख सकते हैं |

राधाकांत शास्त्री

व्यवस्थापक, श्रीमान मन्दिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

श्रीधामोपासना का आधार 'महदाश्रय'

'रसीली ब्रजयात्रा भाग -२' से संग्रहीत

संकलनकर्त्री - साध्वी सुगीताजी मानमन्दिर, बरसाना

जिस प्रकार भगवान् से बड़ा है भगवान् का नाम, भगवान् से बड़े हैं भगवान् के भक्त, उसी तरह धाम भी धामी से बड़ा है। धाम का अवतरण इसीलिए होता है कि जिन साधनों को साधक कर नहीं पाता वह सहज में धामसेवा से ही उस साधन का फल पा लेता है। बड़े से बड़े अपराधों का शमन धाम कर देता है। ब्रज-वसुन्धरा की पावन धरती न केवल सामान्य जीवों के कल्याण की हेतु रही है अपितु इस धरा का आश्रय ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने भी लिया। ६० हजार वर्ष की तपस्या के पश्चात् ब्रह्मा जी को वृषभानुपुर (बरसाना) में पर्वत रूप मिला तो वहीं स्वयं विष्णु भगवान् गोवर्धन में गिरिराज पर्वत एवं नंदगाँव में शंकर भगवान् नंदीश्वर पर्वत के रूप में अवतरित हुए। राधामाधव के नित्य केलि विलास की भूमि भगवद्मिलन की आधाररूपा है। यहाँ का कण-कण भगवद्रूप है। पुरातन समय से संत महात्माओं ने भगवदरस की अनुभूति करते हुए समय-समय पर प्रकट किया है। काल प्रभाववश हमारी दृष्टि इस धरा धाम के दिव्य स्वरूप को समझ नहीं पाती। महापुरुषों द्वारा माहात्म्य दर्शन कराया जाता रहा है। बज्रनाभ जी, चैतन्य महाप्रभु जी एवं श्री नारायण भट्ट जी द्वारा जिस प्रकार ब्रजभूमि के स्वरूप का दिग्दर्शन कराया गया इसी प्रकार ब्रज के विरक्त संत पूज्य गुरुदेव श्री रमेश बाबा के गहन अनुसन्धान एवं शोध के बाद संरक्षण एवं सम्वर्धन से धामाश्रितों को अवलम्ब प्रदान किया है। रसीली ब्रज यात्रा के पूर्व प्रकाशनोपरांत ब्रज के भौगोलिक स्वरूप का वास्तविक चित्रण बड़ी ही जटिल समस्या थी क्योंकि संकीर्णता के रंग से रंजित दूषित भावनाओं में इस धाम को भी अत्यंत सीमित करने का प्रयास किया गया जिसके फलस्वरूप मात्र मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन, बरसाना, बलदेव एवं कामवन तक ही लोग ब्रज समझने लगे। अनन्त परमेश्वर के अनन्त धाम को किसी की स्थूल दृष्टि क्या समझ पायेगी? फिर भी जिस प्रकार भगवान् करुणाकातर हैं, सदा दया करने के लिए आतुर रहते हैं उसी प्रकार ब्रजोपासक संत श्री रमेश बाबा जी की महती अनुकम्पा से ब्रज के वृहद्रूप को लिखने का प्रयास किया गया है जो पाठकों व ब्रजसेवकों को अवश्य ही नवजीवन प्रदान करेगा। मध्यप्रदेश के ग्वालियर का पूर्वी भिण्ड का गोहद जहाँ तक गोवंश परिभ्रमण की सीमा अनेक विद्वानों, संतों ने स्वीकारी है, उधर हरियाणा के सोहना को सीमान्त ग्राम माना तथा पश्चिम में भरतपुर का पहाड़ी गाँव जो वाराह भगवान् के प्रवेश का स्थल था तथा हरिदास जी की जन्म भूमि हरिदासगढ़ अर्थात अलीगढ तक की लीला भूमि मान मन्दिर से प्रकाशित ग्रन्थ रसीली ब्रज यात्रा के द्वितीय भाग में प्रकाशित की गयी है जो आपके सपनों का सुनहरा ब्रज होगा जिसका आश्रय पाकर ब्रज रस रसिक पायेंगे अद्भुत अलौकिक आनंद।

चाचा वृन्दावनदासजी के प्राचीन "ब्रज परिक्रमा" ग्रन्थ के आधार पर जो अनुसन्धान किया गया है, वही 'रसीली ब्रजयात्रा' पुस्तक में दिया गया है।

ब्रज के प्राचीन सीमावर्ती स्थान जो अज्ञात हैं, जहाँ कोई ब्रजयात्रा नहीं जाती है, उन समस्त स्थलों की लीला का अनुसन्धान, नाम साम्य से किया गया है। ब्रज के प्रायः सभी स्थल नाम साम्य से ही चल रहे हैं। ब्रज का कण-कण लीला पर आधारित है एवं उन लीलाओं के आधार पर उनका नामकरण है।

फिर अपभ्रंश तो ब्रज की परम्परा ठहरी।

यहाँ तो कृष्ण का नाम भी कृष्ण नहीं रहने दिया।

कृष्ण नाँव सुन्यो गर्ग ते,
कान्ह कान्ह कहि बोलैं।
या ब्रज में परमेसुर हूके

सुधरे सुन्दर नाम।
ब्रज सम और कोउ नहिं धाम। (नागरीदासजी)

अतः अपभ्रंश भी ग्राह्य है।

"नामैकं यस्य वाचि स्मरणपथगतं श्रोत्रमूलंगतं वा"
शुद्धं वाशुद्धवर्णं व्यवहितरहितं तारयत्येव सत्यम्।

(पद्मपुराण, ब्रह्मखण्ड - २५/२३)

वह नाम शुद्ध हो अथवा अशुद्ध (अशुद्ध से तात्पर्य अपभ्रंश) उससे कल्याण तो निश्चित ही है।

अतः ब्रजभूमि में वर्तमानकाल में भी जो नाम प्रचलित हैं उनका माहात्म्य उसी प्रकार है जो लीलाकाल में रहा होगा । धामनिष्ठ महापुरुषों ने धाम की आराधना का स्वरूप बताया है –

राधानामसुधारसं रसयितुं जिह्वास्तु मे विह्वला
पादौ तत्पदकांकितासु चरतां वृन्दाटवी वीथिषु।
तत्कर्मैव करः करोतु हृदयं तस्याः पदं ध्यायता-
त्तद्भावोत्सवतः परं भवतु मे तत्प्राणनाथे रतिः॥

(श्रीराधासुधानिधि – १४१)

जिसकी जिह्वा केवल राधा नाम ही लेती है, जो केवल धाम में ही रहता है, जिसका शरीर केवल सेवा में ही रहता है एवं हृदय में केवल श्रीचरणों का ध्यान है, उसे ही रसानुभूति होगी | अभी तो हमारी स्थिति यह है कि राधा नाम ही नहीं लेते, इतर चर्चा तो बहुत करते हैं, धाम में वास भी नहीं हो पा रहा है | कुछ तो स्वदोष से ही नहीं आ पाते हैं और कुछ जो आना चाहते हैं, उन्हें ऐसे मार्गदर्शक मिल जाते हैं जो कहते हैं कि धाम में निवास मत करो, अपराध होगा | ठीक है अपराध से भय करो किन्तु इस भय से धामवास मत छोड़ो क्योंकि धामवास से ही सिद्धि मिलेगी | धामवास भी एकमात्र संत-महापुरुषों के आश्रय से ही सार्थक होता है, शास्त्रों में कहा गया है –

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना, नासावृषिर्यस्यमतं न भिन्नम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां, महाजनो येन गतः स पन्थाः॥

(महाभारत, वनपर्व ३/१३/११७)

न श्रुतियों में मतैक्य है, न स्मृतियों में ही।
मुनियों के मत में भी ऐक्य कहाँ?
धर्म का तत्व तो गुहा में ही छिपा हुआ है।
तब कैसे ढूँढ़ें? कहाँ जाएं? क्या करें?
व्यथित होने की आवश्यकता नहीं, ये महापुरुष जिस मार्ग का सृजन करते हुए गये हैं, न स्खलेन्न पतेदिह – आरूढ़ हो जाओ उस मार्ग पर, जहाँ न स्खलन का भय है, न पतन का ही फिर हम जैसे भ्रांत परिश्रान्त पथिकों के लिए इन महापुरुषों का देदीप्यमान जीवन-चरित्र ही तो निर्भ्रान्त पथ-प्रदर्शक है। धन्य तो है इस वसुन्धरा का पवित्र अंचल जो सदा से सन्त परम्परा से विभूषित होता रहा है। महाकवि भवभूति की भविष्य वाणी –

'उत्पत्स्यते तु मम कोऽपि समानधर्मा।
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥'

ऐसी पावन परम्परा में, संसार-प्रवास के न्यूनतम समय में विपुल लोकोपकार करने वाले महापुरुषों का अवतरण भी जन-जन में सरलतम ढंग से भक्तिदान के लिए ही होता है।

||'ब्रजभूमि' का संक्षिप्त इतिहास ||

रसीली ब्रजयात्रा भाग -२' से संग्रहीत
संकलनकर्त्री - व्यासाचार्या बालसाध्वी श्रीजी, मानमन्दिर, बरसाना

विदेशियों की दृष्टि से ब्रज

ह्वेनसांग, फाह्यान आदि चीनी यात्रियों ने तो ब्रज का अपनी दृष्टि से वर्णन किया ही, यवन यात्रियों ने भी इस सर्वाकर्षक भूमि का वैभवदृष्टि से गान किया। प्रथम लेखक, महमूद गजनवी के मंत्री 'अल-उत्वी' ने अपनी "तीरीखे यामिनी" पुस्तक में सन् १०१७ ई. में महमूद द्वारा किये गये ९ वें आक्रमण की चर्चा की है, मथुरा को नष्ट-भ्रष्ट करने के लक्ष्य से हुए इस आक्रमण ने मथुरा को पर्याप्त क्षति पहुँचाई। महावन में कूलचन्द नामक राजा को परास्त कर महमूद मथुरा की ओर बढ़ा, जो ले जा सका उसे लूट ले गया एवं दुर्वह वस्तुओं का विध्वंस आरम्भ कर दिया। मथुरा से वह ५४८ पौण्ड से भी अधिक सोना एवं सोने के ५ विशाल विग्रह ले गया। केशवदेव मन्दिर को देखकर तो महमूद की आँखें ही चौंधिया गयीं, स्वयं लिखता है –"यह देवालय कृष्ण का प्रतीत होता है, सम्भवतः इस मन्दिर का निर्माण गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के काल में हुआ होगा, ह्वेनसांग ने जिन ५ भव्य व दिव्य मन्दिरों का उल्लेख किया है उनमें एक यह भी रहा होगा। इस इमारत के निर्माण में १० करोड़ दीनार (स्वर्ण मुद्रा) एवं अनुभवी कारीगरों द्वारा भी २०० वर्ष से कम समय न लगेगा।"

२० दिन तक मथुरा में लगातार वज्राघात होता रहा।

महमूद के आक्रमण के पश्चात् ही मुसलमान यात्री अलबेरुनी भारत आया। जिसने १०३० ई. में "तहकीके हिन्द" नामक पुस्तक लिखी, जिसमें वायुपुराणादि का आधार लेकर शूरसेन जनपद का वर्णन किया है।

इसके अतिरिक्त १६ वीं शताब्दी में अलबदाऊँनी एवं मोहम्मद कासिम फरिश्ता ने भी मथुरा का विवरण दिया है। अलबदाऊँनी का कहना है – महमूद द्वारा जो मथुरा पर कहर बरसा, इससे मुसलमानों को बड़ी सम्पत्ति प्राप्त हुई। एक ही मूर्ति से ९८, ३०० मिश्कल अर्थात् १४ मन स्वर्ण प्राप्त हुआ, वस्तुतः यही केशवदेव का विग्रह था, जिसमें लगभग डेढ़ किलो का नीलम जड़ित था। इसके अतिरिक्त २५० मिश्कल का बेशकीमती पत्थर प्राप्त हुआ। राजा गोविन्दचन्द का पर्वतवत् विशाल हाथी मिला एवं ऊँटों पर चाँदी की १०० मूर्तियाँ ले जायी गयीं। फरिश्ता ने दूसरे बड़े मूर्तिभंजक सिकन्दर लोदी द्वारा भी जो मथुरा की हानि हुई, वह लिखते हुए कहा है कि लोदी मन्दिर ध्वस्त करता एवं तत्काल वहाँ विशाल मस्जिदें खड़ी करा देता।

ई. १६५० के लगभग फ्रांसीसी यात्री टैवर्नियर मथुरा आया। जन्मभूमि पर बने श्रीकृष्णमन्दिरका दर्शन किया। यह मन्दिर ३५ वर्ष पूर्व ओरछानरेश वीरसिंह द्वारा बनवाया गया था। टैवर्नियर ने भी इस मन्दिर की भव्यता का वर्णन करते हुए कहा – जगन्नाथ व बनारस के मन्दिर के बाद मथुरा का यह मन्दिर ही इतना विशाल है।

५-६ कोस दूर से दिखने वाला यह भव्य देव प्रासाद विलक्षण शोभा लिये है।

यवनकाल और ब्रज

११ वीं शताब्दी के आरम्भ से ब्रज ही नहीं समूचे भारत को विध्वंसकारियों का कठिन सामना करना पड़ा। भारत के भाग्य में उथल–पुथल आरम्भ हो गयी। धीरे–धीरे भारत वो घुमरी-परेता का खेल बना कि कई सदियों (सैकड़ों वर्षों) तक पुनरुत्थान की श्वास भी नहीं ले सका एवं हताहत होता रहा।

विनाश का घोर अंधकार ब्रज के चहुँ ओर घूमने लगा। इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ब्रज पर प्रथम यवन-आक्रमण महमूद गजनवी का ही हुआ है और यह आक्रमण जब अतीत का स्मरण कराता है तो आज भी खून गरम हो उठता है। इस धरती की सहिष्णुता व

साहस तो देखो, विधर्मियों द्वारा इसे पूर्णतया नष्ट-भ्रष्ट करने का भरसक प्रयास हुआ किन्तु यह सनातनी अवनि स्वयं का बार-बार सर्वाङ्गीण उद्धार कर विध्वंसकारियों को अवाङ्गमुख कराती रही। महमूद गजनवी को मथुरा की लूट में सफलता मिलने का मूल कारण था – हिन्दुओं में विघटन। महमूद के लगभग १२५ वर्ष बाद सन् ११५० में अन्तर्वेद के राजा विजयपाल ने एक विशाल विष्णु मन्दिर का निर्माण कराया (कतिपय विद्वानों का कहना है कि इस मन्दिर का निर्माण, विजयपाल ने नहीं अपितु उसके पिता गोविन्दचन्द्र ने कराया है)। प्रबल शासक विजयपाल ने खुसरो को परास्त किया एवं अन्तिम क्षणों में पुत्र जयचन्द्र को राज्यभार सौंप दिया। जयचन्द्र ने भी अपने बुद्धिबल, बाहुबल से राज्य का विस्तार किया।

११९४ ई. में 'कुतुबुद्दीन' द्वारा चंदावर के युद्ध में जयचन्द्र मारा गया। तत्पश्चात् कुतुबुद्दीन ने मनमानी लूट-पाट की अतः ११९४ ई. से ही मथुरा यवन-शासकों के आधीन हो गया।

११९४ से १५२६ की सूक्ष्म झलक

गुलामवंश के बाद मथुरा पर खिलजीवंश का अधिकार हो गया। १२९७-९८ ई. में अलाउद्दीन खिलजी के भाई उलग खाँ ने असकुंडाघाट पर मन्दिर के स्थान पर एक मस्जिद खड़ी करा दी, जो मकदूम साहब की मस्जिद कही जाती है।

खिलजी वंश के पश्चात् मुहम्मद तुगलक ने तो धर्म पर कुठाराघात ही नहीं प्रत्युत प्रजा पर अमानवीय अत्याचारों का कहर बरसाया। १३३६ ई. में ऐसा दुर्भिक्ष पड़ा कि कृषक कृषि छोड़ डकैती करने को विवश हो गये। मुहम्मद तुगलक के बाद फ़िरोज तुगलक राज्यासीन हुआ परन्तु अब तुगलक शक्तिहीन होते जा रहे थे, तुर्की ने इस अवसर का लाभ उठाया, १३३८ ई. के आक्रमण में तुर्की ने तुगलक को परास्त किया। अब मथुरा लोदीवंश के आधीन हो गयी। १४८८ ई. में लोदी ने विजयपाल द्वारा निर्मित केशवदेव मन्दिर धराशायी करा दिया। लोदीकाल में हिन्दुओं पर जो अत्याचार हुआ, यह दूसरा अवसर था महमूद के अत्याचारों को पुनः प्रकट देखने का। १४८८ से १५१६ तक इस दुष्ट यवन का दुर्वह भार वहन किया अवनि ने। गजनी से भूल में अवशिष्ट वस्तु का विनाश किया लोदी ने। देवालयों में देव-विग्रहों के खण्ड-खण्ड करा उन्हें मांस तौलने के उपयोग में लिया गया। सिकन्दर लोदी के समय में बलात् बहुत से हिन्दुओं का धर्म-परिवर्तन कराया गया, उन्हें यवन बनाया गया। कोई भी ब्राह्मण, हिन्दू क्षौर कराना चाहता तो बाल काटने को नाई नहीं मिलते थे। आज भी ब्रज में सम्पूर्ण मेवात क्षेत्र (जो इन कट्टर यवन शासकों के पूर्व हिन्दू ही था, वे स्वयं भी इस बात को स्वीकार करते हैं) के मुसलमान मूलतः न होकर परिवर्तित यवन हैं।

लोदीकाल में सबसे बड़ी हानि हिन्दुओं को धर्म-परिवर्तन की हुई। सिकन्दर लोदी का पुत्र इब्राहिम लोदी १५२६ ई. में बाबर से पानीपत के युद्ध में पराजित हो गया। अब भारत पर बाबर का राज्य हो गया। १०१७ ई. से लेकर १४८८ ई. तक ब्रज पर कल्पनातीत अत्याचार हुए किन्तु विशाल विष्णु मन्दिर लगभग पौने पाँच सौ वर्षों तक दुष्ट दैत्यों से सुरक्षित रहा।

मुगलकाल

बाबर के समय:-

अफगानों को पराजित कर ६ मई सन् १५२९ को घाघरा-युद्ध में बाबर ने हिमालय से ग्वालियर और चन्देरी तक स्वसाम्राज्य कर लिया। मथुरा पर बाबर का शासन वर्षाधिक न रहा। बाबर की मृत्यु के पश्चात् ३० दिसम्बर सन् १५३० ई. को हुमायूँ शासक घोषित हुआ। हुमायूँ ने स्वराज्य भाइयों को बाँट दिया। छोटा भाई 'हिन्दाल' बदखशां से जब लौटकर आया तो उसे मेवात क्षेत्र जागीर में दे दिया, जिसमें मथुरा भी था। अब मथुरा पर हिन्दाल का अधिकार हो गया।

हुमायूँ सब कुछ खो बैठा। १५४५ ई. में मथुरा शेरशाह सूरी के अधिकार में आ गया। १५४० से १५४५ ई. में शेरशाह सूरी ने आगरा से दिल्ली तक एक सड़क का निर्माण कराया जो कलकत्ता से लाहौर (पाकिस्तान) होते हुए अफगानिस्तान के काबुल तक जाती है, आज भी 'जी. टी. रोड' के नाम से जानी जाती है। शेरशाह के पश्चात् इस्लामशाह सूर सिंहासनासीन हुआ फिर उसका बेटा फ़िरोज गद्दी पर बैठा, जिसे मामा मुबारिक खाँ ने ३ दिन बाद ही हटाकर मथुरा को अपने आधीन कर लिया। यही मुबारिक खाँ आगे चलकर मुहम्मद आदिलशाह के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आदिलशाह के पश्चात् ३० अक्टूबर सन् १५५३ से लेकर १५५५ तक मथुरा इब्राहिम सूर के अधिकार में थी। उधर आदिलशाह का बहनोई सिकन्दरशाह आगरे में बढ़ता चला आ रहा था। १५५५ ई. में इब्राहिम ८०, ००० सैनिकों की विशाल सेना लेकर "फरह ग्राम" (मथुरा-आगरा राजमार्ग पर स्थित) में आ गया। इस युद्ध में इब्राहिम परास्त हुआ, सिकन्दर द्वारा लूटपाट हुई एवं मथुरा सिकन्दर के अधिकार में हो गया। इसके पश्चात् हुमायूँ ने सेना संगठित कर सिकन्दरशाह को युद्ध में परास्त किया और पुनः सत्ता प्राप्त की। २७ जनवरी १५५६ में हुमायूँ का देहान्त हो गया। आदिलशाह का हितैषी हेमू वैश्य आगरे की ओर बढ़ा किन्तु मुगलों पर विजय प्राप्त करना कठिन देख दिल्ली की ओर बढ़ गया। इस युग का यही एक हिन्दू व्यक्ति हुआ। १५५६ के प्रारम्भ में मथुरा को हेमू का संरक्षण प्राप्त हुआ। नवम्बर में पानीपत के युद्ध में हेमू, अकबर की सेना से युद्ध करता हुआ बैरम खाँ के द्वारा मारा गया। विजय प्राप्त कर ६ नवम्बर १५५६ को अकबर ने दिल्ली पर अधिकार प्राप्त कर लिया। मथुरा भी अकबर के अधिकार में आ गई। **अकबर के समय:-** अन्य शासकों की अपेक्षा अकबर के शासन काल में हिन्दू धर्म का कुछ कम ह्रास हुआ अनेक वैष्णव ग्रन्थों में भी यत्र-तत्र अकबर की चर्चा है। अकबर ने सर्वप्रथम १५६२ ई. में हिन्दुओं को यवन बनाने (धर्म-परिवर्तन) पर प्रतिबन्ध लगा दिया। १५६३ ई. में उसने यात्री-कर भी उठा लिया। अकबर के दरबार में श्रेष्ठ संगीतज्ञ, साहित्यकार, चित्रकार थे जिनमें कुछ ब्रजवासी भी थे। शताधिक चित्रकारों में प्रमुख चित्रकार १७ थे, इन १७ चित्रकारों में भी १३ चित्रकार हिन्दू थे। दशवन्त, बसावन, लाल, मुकुन्द, मधु, जगन, तारा, खेमकरन, हरिवंश, रामादि, ये उसकी धार्मिक रुचि के परिचायक थे। अकबर-दरबार में भक्त कवियों का बहुत सम्मान था। इस काल में हिन्दूधर्म ने बहुत उन्नति की। मथुरा, वृन्दावन एवं गोवर्धन में अनेक भव्य देव मन्दिरों का निर्माण हुआ। वृन्दावन में गोविन्ददेवजी, गोपीनाथजी, युगलकिशोरजी तथा मदनमोहनजी मन्दिर प्रसिद्ध हैं।

आमेरनरेश भगवान् दास ने गोवर्धन में हरिदेवजी के मन्दिर का निर्माण कराया था एवं १५७५ ई. में अपनी माँ (भारमल की पत्नी) की स्मृति में सतीबुर्ज का निर्माण कराया। गिरिराजजी में राजा भगवान् दास के पुत्र राजा मानसिंह ने मानसीगंगा व वृन्दावन में गोविन्ददेवजी का मन्दिर बनवाया। सन् १५५६–१६०५ तक का अकबर का शासन काल हिन्दूधर्म के लिए पूर्व की अपेक्षा कुछ सुखद रहा। अक्टूबर १६०५ में अकबर की मृत्यु के पश्चात् पुत्र जहाँगीर गद्दी का मालिक हुआ।

जहाँगीर के समय

मथुरा में बहुत कुछ विकास जहाँगीर के समय में भी हुआ है, यथा – ओरछानरेश वीरसिंहदेव द्वारा ३३ लाख रुपये में केशवदेव मन्दिर का निर्माण एवं २ विशाल सरोवरों का भी निर्माण हुआ, जिनमें (१) शेर सागर साढ़े पाँच कोस के घेरे में था एवं (२) समुद्र सागर २० कोस बड़ा सरोवर था, यवन ग्रन्थों (मासिर-उल उमरा) में इनका उल्लेख प्राप्त होता है, यह सब जहाँगीर काल में ही हुआ है। इसके अतिरिक्त लूणकरण चौहान द्वारा श्रीराधावल्लभलाल (वृन्दावन), राम मन्दिर एवं १६२७

ई. में श्रीयुगलकिशोरजी के मन्दिर का निर्माण-कार्य हुआ। ऐसे अन्य कई कार्यों को देखकर कहा जा सकता है कि जहाँगीरकाल में भी ब्रज-विकासोन्मुख रहा।

२८ अक्टूबर १६२७ ई. को लाहौर में जहाँगीर का शरीरान्त हुआ एवं पुत्र शाहजहाँ गद्दी का अधिकारी हुआ।

शाहजहाँ के समय

१६२८ ई. में जब शाहजहाँ गद्दी पर बैठा तो ईशतार खाँ मथुरा का फौजदार बना। १६३६ ई. में विद्रोह बढ़ रहे थे, जिन्हें शान्त करने चरित्रहीन मुर्शेदकुली खाँ आया; गोकुल में जन्माष्टमी के अवसर पर लगने वाले मेले में से बलात् सुन्दर हिन्दू-स्त्रियों, कन्याओं को अपहरण कर ले जाता, इससे ब्रज का जाट-संगठन भड़क उठा एवं १६३८ ई. में उसे जाटों द्वारा भूमिशयन करा दिया गया। अब आजम खाँ मीर मुहम्मद बकीर (इरादत खाँ) फौजदार बना, जिसने मथुरा में आजमाबाद सराय एवं बकीरपुर नामक २ ग्राम बसाये। इसके बाद शाहजहाँ ने मथुरा में मकरामक खाँ को भेजा, मकरामक के बाद ही शाहजहाँ पुत्र दाराशिकोह मथुरा का जागीरदार बन गया। दारा ने सन् १६५४-५७ के मध्य केशवदेव मन्दिर को पाषाण का सुन्दर कटघरा बनवाकर समर्पित किया। सन् १६५७ में शाहजहाँ रोगग्रस्त हुआ और इधर उसके पुत्रों में संघर्ष छिड़ गया।

दारा ने अल्लाबर्दी खाँ के पुत्र जफरखाँ को मथुरा का फौजदार बनाया और स्वयं गद्दी के लिए युद्ध को तैयार हो गया।

२९ मई १६५८ ई. को दारा श्यामगढ़ के युद्ध में औरंगजेब से परास्त हुआ। औरंगजेब ने मुराद को जीतकर शाहजहाँ को कैद में डाल दिया। बादशाह ने जफर के स्थान पर कासिक खाँ को मथुरा का फौजदार बनाकर भेजा परन्तु वह पहुँच न सका, मार्ग में मारा गया। शाहजहाँ का समय समाप्त हो गया। **औरंगजेब के समय से उसके बाद तक का काल-**सन् १६५८ में २१ जुलाई को औरंगजेब सत्तारूढ़ हो गया। तहस–नहस के झंझावात ने फिर से मथुरा को झकझोरा। इधर जाटों का संगठन भी तैयार हो गया था अतः विद्रोह आरम्भ हो गया। औरंगजेब ने १६६० ई. में अब्दुल्लनवी को मथुरा का फौजदार बनाकर सेना सहित भेजा। अब्दुल्लनवी ने आते ही प्राचीन मन्दिरों को ध्वस्त कराके वहाँ मस्जिदें खड़ी करा दीं। दारा द्वारा दिया गया कटघरा केशवदेव के मन्दिर से १६६६ ई. सितम्बर में तुड़वा दिया एवं हिन्दुओं पर जजिया कर लगवा दिया। १६६९ ई. ९ अप्रैल को दूसरा आदेश निकला – "काफिरों के देवालय, पाठशाला को नष्ट कर दिया जाय, उनके धार्मिक-कार्यों को बलपूर्वक बन्द कराया जाय।" सहिष्णुता की सीमा तोड़कर जाटों का क्रोध अग्नि रूप ले बैठा। तिलपत गाँव के वीर गोकुल सिंह (मूल नाम 'कान्हर देव' था) ने जाटों को संगठित कर अब्दुल्लनवी पर हमला किया परिणामतः वह मारा गया। यही घटना 'औरंगजेब नामा' में कुछ प्रकारान्तर से है – अब्दुल्लनवी की मृत्यु के बाद सफकिशन खाँ मथुरा का फौजदार बना किन्तु जाटों का दुर्धर्ष पराक्रम किसी से दबाया नहीं जा रहा था। औरंगजेब स्वयं दिल्ली से आगरा की ओर आया। सफशिकन खाँ का स्थान (मथुरा के फौजदार का) हुसैनअली को सौंप दिया गया।

हुसैनअली खाँ की आँखों में भी मथुरा के मन्दिर ही चुभ रहे थे। पुनः विध्वंस आरम्भ हुआ। केशवदेव का मन्दिर ध्वस्त कराकर, मस्जिद खड़ी कराई गयी। मन्दिर की बहुमूल्य मूर्तियाँ अकबराबाद (आगरा) में कुदसिया बेगम की मस्जिद की सीढ़ियों के नीचे गढ़वा दीं। कट्टर धर्मान्धता से ग्रसित औरंगजेब ने हिन्दू धर्म की धार्मिक धरोहरों के भौतिक विध्वंस के साथ साथ ब्रज के सांस्कृतिक विध्वंस का अभियान भी प्रारम्भ किया तथा मथुरा व वृन्दावन का नाम भी इस्लामाबाद और मोमिनाबाद रख दिया गया। शासन-विभाग के प्रत्येक पद पर मुसलमान थे। शाह मुहम्मद, लाल मुहम्मदादि

को हुसैन खाँ द्वारा जमींदार बनाया गया। हिन्दुओं पर पुनः जजिया कर, व्यापारी कर लगाए गये, ५ प्रतिशत चुंगी बढ़ा दी गई, हिन्दुओं को पालकी, हाथी, घोड़े की सवारी भी बन्द करा दी गई एवं बलात् मुसलमान बनाया गया।

हुसैन के बाद मीरकुल मथुरा का फौजदार बना। इधर जाट संगठन भी धीरे-धीरे अपनी-अपनी शक्ति के विकास में प्रयासरत था। १६८५ ई. में नये जाट नेता सिंसनी के राजाराम एवं सोघर के रामचेरा ने जाटशक्ति को पूर्णतया बढ़ा लिया था। राजाराम ने तो सिकन्दरे में अकबर के मकबरे से अकबर की अस्थियों को जलाकर गाढ़ दिया।

यवनों व जाटों की खूब तनातनी चली। २० फरवरी १७०७ ई. में औरंगजेब की अहमद नगर में मृत्यु हो गई। अब मथुरा औरंग पुत्र मुअज्जम के अधिकार में आ गया। बहादुरशाह (मुअज्जम) के बाद फर्रुखशियर और उसके बाद मुहम्मद शाह गद्दी पर बैठा, इसी बीच मराठों, जाटों तथा मुगलों में पारस्परिक संघर्ष आरम्भ हो चुके थे। मुहम्मद शाह की विषय-विलासिता का नादिरशाह ने लाभ उठाया, मुहम्मद को नादिर से संधि करनी पड़ी।

२८ अप्रैल १७४८ को अहमदशाह गद्दी पर बैठा। अहमदशाह अब्दाली ने १७५७ ई. में सेना भेजकर हिन्दू धर्मावलम्बी प्रजा का क़त्ल कराया। बहुत से नागरिक महामारी के फैलने से स्वयं ही मर गये।

तारीखे आलमगीर सानी (पृ. १०५) के अनुसार १७५७ में २८ फरवरी से ६ मार्च तक अफगानियों ने इस पवित्र भूमि पर बिना रुके मार-काट की। जहान खाँ को अहमदशाह अब्दाली का आदेश मिला – हिन्दू नगर मथुरा को शस्त्रों से साफ कर दो, आगरा तक नर तो क्या कोई घर भी न बचे। जो जितना लूटेगा, लूटा हुआ धन उसी का होगा, हिन्दुओं के इतने सिर चाहिए कि जिनसे एक मीनार बनाई जा सके, एक सिर काटने पर ५ रुपए पुरस्कार रूप में दिए जाएंगे। सिलैक्शन्स फ्रॉम पेशवा ऑफिस जिल्द २१ पृ. १११ पर लिखित है –

आज्ञा पाते ही प्रत्येक यवन सैनिक घोड़े पर सवार हुआ, घोड़े की पूंछ में १०-२० और घोड़े बाँध दिये एवं दोपहर होने से २ घण्टे पूर्व तक तो प्रत्येक सवार ने लूट के सामान से घोड़े लाद लिये, जिनके ऊपर अपहरित सुन्दर-सुन्दर हिन्दू कन्याएं भी थीं। बहुत से हिन्दू कैद कर लिये गये, कटे हुए मस्तकों की गठरी उन पर लादी गयी। अन्त में कैदियों का भी क़त्ल कर दिया। भालों पर टांगकर वे 'सिर' पुरस्कार प्राप्ति के लिए पेश किये गये।

तारीखे हुसैन शाही पृ. ३९ के अनुसार –

देव-मूर्तियों को खण्डित कर उन्हें गेंदों की तरह उछाला गया, तीन हजार लोगों का रक्त बहा, शेष पर एक लाख रुपया जुर्माना कर दिया, नगर में आग लगा दी। यह एक क्रूरता की परावधि का प्रदर्शन था, जो प्रतिदिन का क्रम था।

"ब्रज का इतिहास" ग्रन्थानुसार मथुरा-वृन्दावन की लूट में अब्दाली को १२ करोड़ की धनराशि प्राप्ति हुई। ब्रज-प्रदेश में जाट-शक्ति ने बृहत् टक्कर ली। सुना जाता है कि सन् १७५७ में हुए अहमदशाह अब्दाली के द्वारा भीषण संग्राम में भरतपुरनरेश सूरजमलजाट तैयार न था किन्तु पुत्र जवाहरसिंह अपनी आँखों के आगे यह नर-संहार न देख सका एवं वीर सेना को साथ लेकर मथुरा से दिल्ली मार्ग पर ८ मील दूरस्थ चौमुहा गाँव में डटकर सामना किया। २८ फरवरी १७५७ को सूर्योदय से ९ घण्टे अखण्ड रूप से युद्ध चला, जिसमें ३ हजार जाट व अफगानी भी बड़ी संख्या में समाप्त हुए। हिन्दुओं में न प्रतिरोध की शक्ति थी, न प्रतिशोध का स्वभाव, क्योंकि प्रायः सभी ब्राह्मण ही थे, हिंसावृत्ति थी नहीं। जहान खाँ के बाद नजीब खाँ ३ दिन तक शहर में डेरा डाले रहा। उसने भूमि में गढ़े हुए धन को लूटा। एक मुसलमान जो इस घटना-क्रम के कुछ दिन बाद मथुरा में आया, उसने अपनी आँखों देखी स्थिति का वर्णन करते हुए कहा है – नगर जल रहा था, मकान धराशायी थे, जहाँ तक दृष्टि जाती खण्डित शव ही दिखाई पड़ते, पास में प्रवाहित

यमुना का जल भी रक्त से लाल हो बह रहा था। तट के समीप कुछ वैरागी, सन्यासी महात्माओं की कुटी में गया तो वहाँ नर-मुण्ड के साथ गो-मुण्ड रखा हुआ देखा किन्तु अभी यहीं बस न था। विध्वस्त मथुरा से निकलकर रक्त-पिपासु जहान खाँ ६ मार्च १७५७ को वृन्दावन जा पहुँचा, जहाँ उसने निर्दोष वैष्णवों व धर्मप्राण प्रजा का कत्लेआम किया।

एक मुसलमान ने वृन्दावन की स्थिति लिखी –

एक-एक स्थान पर २००-२०० बच्चों के ढेर पड़े थे, जलवायु इतनी दूषित हो चुकी थी कि श्वांस लेते नहीं बनती थी। १५ दिन पश्चात् अहमदशाह अब्दाली स्वयं यहाँ आया, १५ मार्च १७५७ को मथुरा पहुँचा किन्तु मृत शवों से निकलती असह्य दुर्गन्ध के कारण मथुरा में डेरा न डाल सका, यमुना पार कर महावन में उसने अपना डेरा लगाया।

'देहली क्रोनीकल' के अनुसार –

१८ मार्च को दिल्ली में संदेश पहुँचा कि अहमदशाह अब्दाली मथुरा से वृन्दावन की ओर बढ़ गया है। महावन के निकट वल्लभ सम्प्रदायाचार्यों की गादी है। यहाँ के मन्दिरों में नागा सन्यासी ही पुजारी हैं। अब्दाली ने सेना की एक टुकड़ी गोकुल लूटने के लिये भेजी। परन्तु नागाओं के आगे सेना की न चली। ४००० नागा साधु 'भभूत लगाये, शस्त्र लिये' गोकुल के बाहर आये, २००० सैनिकों का कत्ल किया एवं स्वयं भी वीरगति को प्राप्त हो गये। गोकुल की लूट में अब्दाली को कुछ न मिला। श्रीगोकुलनाथजी की प्रतिमा सुरक्षित रही, इस जाग्रत प्रतिमा का यवन स्पर्श भी न कर सके।

जाटों का शासन काल एवं ब्रज

औरंगजेब द्वारा हुए विनाश से जाटों की सुप्त शक्ति जागी। सर्वप्रथम सन् १६६९ ई. के विद्रोह में जाट नन्दराम ने नेतृत्व किया, नन्दराम के बाद मुगलों के प्रति विद्रोह का नेतृत्व गोकुला जाट ने सम्भाला। उसने शाही सेना को बहुत लूटा, मुगलों को खदेड़ दिया। आगरा में मुगलों द्वारा पकड़े जाने पर गोकुला जाट का वध कर दिया। गोकुला के बाद १६८५ ई. में राजाराम जाट ने जाटों का नेतृत्व किया। थून और सिनसिनी में उसका स्वतन्त्र साम्राज्य था। धीरे-धीरे बढ़ते-बढ़ते सिनसिनी से धौलपुर तथा मथुरा से आमेर तक इसने राज्य कर लिया। औरंगजेब जाट-शक्ति से बड़ा व्यथित रहने लगा। सन् १६८८ ई. में राजाराम जाट ने अकबर के मकबरे को लूटकर उसकी अस्थियाँ जला दी थीं। औरंगजेब ने पौत्र बेदारबख्त को, राजाराम को पकड़ने के लिए भेजा, सन् १६८८ में राजाराम युद्ध के दौरान मारा गया। अब जाटों का नेतृत्व राजाराम के पिता भज्जा सिंह ने किया। औरंगजेब ने जयपुरनरेश विशन सिंह को उस क्षेत्र का सूबेदार बना दिया। १६९० ई. में विशन सिंह व बेदारबख्त द्वारा हुए आक्रमण में राजाराम पुत्र जोरावर ने मुगल सेना से टक्कर ली। जाटों का यह आक्रोश मुगलों के लिए भारी हो गया किन्तु मुगलों के पास सेना अधिक होने से जाट नायक जोरावर मारा गया, सिनसिनी मुगलों के अधिकार में आ गई। अब जाटों का नया नायक चूड़ामन वीर बना, जो कि राजाराम का भतीजा था। औरंगजेब के दोनों पुत्रों में उत्तराधिकार के लिए संघर्ष चल रहा था, जिसका लाभ चूड़ामन ने लिया। दोनों ही युवराजों को लूटकर अपनी सैन्यशक्ति को मजबूत किया। जाटों की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर औरंगजेब के बड़े पुत्र मुअज्जल (बहादुर शाह) ने दिल्ली की गद्दी पाते ही जाट सरदार चूड़ामन से सन्धि कर ली। १७१२ ई. में बहादुर शाह मृत्यु को प्राप्त हो गया, पुत्र जहाँदरशाह शासक बना, यह भी वर्ष भर के भीतर भतीजे फर्रुखशियर द्वारा मारा गया। १७१३ ई. में फर्रुखशियर बादशाह हुआ, इसने भी चूड़ामन से सन्धि करना ही उचित समझा। सन्धि कर चूड़ामन को दिल्ली से धौलपुर तक के क्षेत्र का सूबेदार घोषित कर दिया। चूड़ामन को यह अनुकूल काल जाट-शक्ति को प्रबल करने के लिए अच्छा मिल गया। चूड़ामन के नेतृत्व में जाट-शक्ति दुगुनी-चौगुनी हो गयी।

१७२१ ई. में चूड़ामन की मृत्यु हो गयी तब चूड़ामन के भतीजे बदनसिंह ने (१७२१–१७५५) ३४ वर्ष तक राज्य किया। बदन सिंह ने डीग और कुम्हेर में दुर्गों का निर्माण कराया एवं १७२३ ई. में दीर्घपुर (डीग) में जाट राज्य की स्थापना की। कामा में भी बदनसिंह द्वारा अनेक प्रशंसनीय निर्माण कार्य हुए। १७५५ ई. में बदनसिंह की मृत्यु हो गयी। सन् १७५५-१७६३ तक बदनसिंह के ज्येष्ठ पुत्र सूरजमल का शासन काल रहा। सन् १७४५ से १७५३ तक अपने पिता के ही काल में शूरवीर सूरजमल ने सात युद्ध किये, जिनमें तीन युद्ध विशेष हैं।

(१) सन् १७४७ में जयपुर व मराठों के बीच युद्ध।

(२) सन् १७४८ में आगरा, अजमेर शासक जलावत खाँ के विरुद्ध युद्ध।

(३) सन् १७५३ में की गई दिल्ली की लूट।

उस समय की यवनों की दशा सूदन कवि के शब्दों में –

"रब की रजा है हमें सहना ही बजा वक्त हिन्दू का गजा है आया ओर तुरकानी का"

दिल्ली की लूट से सूरजमल को जो अपार धनराशि प्राप्त हुई, उससे उसने ब्रज के धार्मिक स्थानों में मन्दिरादि का निर्माण कराया।

देस देस तजि लक्ष्मी दिल्ली कियो निवास।
अति अधर्म लखि लूट मिस चली करन ब्रजवास॥

(सूदन कवि)

जाट-शक्ति उस समय इतनी प्रबल थी कि यदि जाट, राजपूत, मराठों में पारस्परिक विघटन न होता तो ब्रज ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण उत्तर भारत क्रूर राक्षस अब्दाली के द्वारा हुए विनाश से बच जाता। पानीपत १७६१ ई. के युद्ध के पश्चात् सूरजमल ने मुगलों की राजधानी आगरा को लूटा। आगरा के साथ-साथ हरियाणा शासक मुसब्बी खाँ को कैद कर भरतपुर भेज दिया व हरियाणा को अपने राज्य में मिला लिया। अलीगढ़, मथुरा, आगरा, धौलपुर, हाथरस, एटा, मैनपुरी, गुड़गाँव, रोहतक, रेवाड़ी, फर्रूखनगर, मेरठ के जिले उसके राज्यान्तर्गत हो गये। इस प्रकार अब यमुना से चम्बल तक विस्तृत क्षेत्र पर सूरजमल का अधिकार हो गया। वह चाहता था कि दिल्ली भी मेरा शासन स्वीकार करे। इस पर मुगल बादशाह का वज़ीर नजीबुद्दौल खौल उठा। सूरजमल सेना सहित जब दिल्ली की ओर बढ़ा तो नजीबुद्दौला ने अहमदशाह को सहायता के लिए पुनः भारत-आगमन का निमन्त्रण दिया, वह आ न सका। खेद की बात – इस युद्ध में वीर पुरुष सूरजमल वीरगति को प्राप्त हो गया। सूरजमल की मृत्यु के समय उसके कोष में १० करोड़ रुपया था। जाट-सेना बिना नायक के भी पीछे नहीं हटी, उसी धैर्य, साहस से लड़ती रही। आश्चर्य की बात – ऐसी स्थिति में जाट-सेना ने ऐसा पराक्रम दिखाया कि मुस्लिम सैनिक मैदान छोड़ भाग खड़े हुए एवं जाट वीर ध्वनि करते हुए अपने क्षेत्र लौट आये। सूरजमल द्वारा ब्रज में अनेक श्लाघनीय कार्य सम्पन्न हुए – डीग का किला सुन्दर व मजबूत करने के अतिरिक्त अनेकों सदनों का निर्माण। सूरजमल की रानी किशोरी ने गोवर्धन में किशोरी श्याम का मन्दिर एवं रानी हंसा ने मथुरा में हंसाघाट, हंसगंज घाट का निर्माण कराया, मथुरा-वृन्दावन के मुख्य मार्ग पर छोटे-बड़े वृक्ष लगवाये।

सन् १७६४ में सूरजमल पुत्र जवाहरसिंह ने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए दिल्ली पर चढ़ाई कर दी, पुनः नजीब ने घबड़ाकर हिमायती अब्दाली को निमन्त्रण दिया। जाटों ने शहादरा लूटा, नजीब को जब पराजय के अलावा कुछ दिख ही नहीं रहा था तब उसने जवाहरसिंह के आगे सन्धि प्रस्ताव रखा किन्तु जवाहर कहाँ मानने वाला? जवाहर से द्वेष करने वाले कुछ जाट भी सन्धि प्रस्ताव पर जोर देने लगे तो जवाहर लूटपाट कर बिना युद्ध के लौट गया किन्तु सन्धि नहीं की। सन् १७६८ में एक अज्ञात ने षडयंत्र कर आगरे में उसका वध कर दिया। जवाहरसिंह के बाद भाई रतनसिंह राजा बना, यह भी थोड़े दिन राज्य करने के बाद किसी कुचक्र के दौरान मारा गया। पश्चात् पुत्र हरीसिंह को राजा बनाने

की बात उठी किन्तु हरीसिंह की आयु कम होने से उसके दोनों चाचा नवलसिंह व रणजीतसिंह में परस्पर कलह हो गया। इधर मराठे उत्तर भारत पर अपना राज्य स्थापित करना चाहते थे किन्तु इसके लिए उन्हें पहले जाटों से मुकाबला करना आवश्यक था। सन् १७६९ में मराठों की फौज तुकोजी राव होल्कर एवं महादानी सिंधिया की कमान में आयी। नवलसिंह के पास जाट-सेना अधिक थी, उधर रणजीतसिंह मराठों में जा मिला। मथुरा के पास जाट और मराठों का भीषण संग्राम हुआ, जिसमें नवलसिंह पराजित हुआ। जाटों में तो आपसी कलह फैल ही गया था, उधर १७७३ ई. में माधवराय पेशवा की मृत्यु के बाद वहाँ भी उत्तराधिकार के पीछे विवाद बढ़ गया। इस स्थिति का लाभ लिया मुगल बादशाह शाहआलम ने। उसने वज़ीर नजफ़ खाँ को कहा – 'जाओ, जाटों द्वारा अपहृत अपना भू-भाग वापस लो।' सन् १७७३ में शाहदरा, वल्लभगढ़, कोटवन आदि कई स्थानों पर जाट और मुगलों का संघर्ष हुआ। इसमें जाटों को पीछे हटना पड़ा। सन् १७७४ में जाटों ने बरसाना में अपनी सेना का पुनः गठन किया एवं मुगलों से घमासान समर हुआ। बरसाना में जाटों ने बड़ा शौर्य प्रदर्शन किया किन्तु श्री राधारानी से रक्षित बरसाना धाम को किसी प्रकार की क्षति न पहुँचा सके।

मेवात का इतिहास

जो ब्रजभूमि सम्पूर्ण भारतीय सांस्कृतिक जीवन का हृदय है, उसका विनाश केवल चौरासी कोस का विनाश नहीं बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र और विश्व का विनाश है।

ब्रज-विनाश के मुख्यतः दो कारण –

१.विदेशी आक्रान्ता (यवनादि)

२.देशी आक्रान्ता (अनन्यता के आवरण में संकीर्ण-विचारक)

यवन-आक्रान्ताओं के भीषण अत्याचार, "बलात धर्म-परिवर्तन" आदि से हिन्दू-धर्म का सर्वाधिक ह्रास हुआ। विधर्मियों ने केवल चौरासी कोस की भूमि ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारत पर दमन चक्र चलाया।

कैसे आये भारत?

सर्वप्रथम ७१२ ई. में मोहम्मद बिन कासिम का आक्रमण हुआ, जिसने सिन्ध प्रान्त के हिन्दू राजा दाहिर को पराजित कर भीषण अत्याचार किया। तलवार के बल पर हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन किया। कुछ धर्मनिष्ठ हिन्दू राजपूत वहाँ से पलायन कर मेवाड़ आये, परन्तु उनको आश्रय नहीं मिला, धिक्कार है हमें, अपनों को भी नहीं अपना पाये। तब उनमें से कुछ मेवात क्षेत्र में आकर बस गये।

उसके बाद मोहम्मद गोरी का आक्रमण हुआ, हिन्दू हृदय सम्राट पृथ्वीराज चौहान ने १७ बार उस आततायी को परास्त किया। परन्तु अन्तिम युद्ध अपनों के विश्वासघात से पृथ्वी राज हारे और बन्दी बनाए गए। मोहम्मद गोरी ने अपने गुलाम कुतुबुद्दीन एबक को दिल्ली का शासक बना दिया। गुलाम वंश के बाद तो फिर खिलजी वंश, तुगलक वंश, सैयद वंश, लोदी वंश और अंत में मुगल वंश का स्थापक बाबर आया, जिसका मेवाड़ के महाराणा संग्राम सिंह (राणा सांगा) के साथ खानवा के मैदान में भीषण युद्ध हुआ | दो बार राणा सांगा ने बाबर को धूल चटाई परन्तु तीसरे युद्ध में छल से बाबर ने राणा सांगा को परास्त किया और फिर वही बलात् धर्म परिवर्तन का अमानवीय कृत्य।

मुगलवंश में बाबर के बाद क्रमशः हुमायूँ पुत्र अकबर पुत्र जहाँगीर पुत्र शाहजहाँ पुत्र औरंगजेब के हाथ में सत्ता आई। इस क्रूर शासक ने उत्तरप्रदेश, राजस्थान, पंजाब प्रदेश के गुर्जर व जाटों पर ऐसा कहर बरसाया कि साफ-साफ खुले शब्दों में कह दिया – 'मुसलमान बनो या सिर कटवाओ।'

********************लगन प्रभु से लगा बैठे जो होगा देखा जाएगा |**********************

*********************उन्हें अपना बना बैठे जो होगा देखा जाएगा ||**********************

हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाने की यह श्रृंखला यहाँ ही नहीं टूटी।

देखते-देखते मेवातियों का क्षेत्र बहुत बढ़ गया। आज ये अलवर, भरतपुर, गुड़गाँव, हथीन, फरीदाबाद, पलवल के अन्तर्गत बसे हुए हैं जो अधिकांश राजपूत व मीणा जाति में से हैं। आज भी मीणाओं से इनके बहुत गोत्र मिलते हैं; जैसे सिंहल, नाई, इलोत, पुण्डलोत, देहगल, घिंगल, बालातादि। ये लोग बारह पालों व चालीस गोत्रों में विभक्त हैं। यद्यपि मेव इस्लाम-धर्मी हैं किन्तु कुछ समय पूर्व तक ये होली, दिवाली, दशहरा, जन्माष्टमी आदि हिन्दू-पर्वों को ईद, मुहर्रम व शबेरात आदि इस्लाम पर्वों की भाँति मनाया करते थे। विवाह-मुहूर्त भी ब्राह्मणों से दिखवाया करते थे। वेष-भूषा भी हिन्दुओं से बहुत मिलती थी और इनकी स्त्रियाँ भुजाओं में गोदना गुदवाती थीं, जिसे इस्लाम में अच्छा नहीं समझा जाता। सन् १३६० ई. में इन लोगों ने इस्लाम-धर्म स्वीकार किया। इस्लाम-धर्म स्वीकार कराने वालो में हजरत मीरान, हजरत सैय्यद सालार व ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती का नाम उल्लिखित है। इनमें भी सैयद सालार की मुख्य भूमिका है। आज भी मेव लोग हजरत सैय्यद सालार के झण्डे की पूजा करते हैं। यह हजरत सैय्यद सालार, महमूद गजनवी के साथ भारत आया था। बहुत सम्भव है कि इन तीनों मुस्लिम धर्म गुरुओं के प्रयास से ही मेवात क्षेत्र इस्लाम धर्म में परिवर्तित हो गया। क्योंकि फिरोज तुगलक के समय में तो अधिकांश मेवात की जनता हिन्दू ही बतायी जाती है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यहाँ की जनता को मुसलमान शासकों के बहुत अत्याचार सहने पड़े। ई. सन् १२६१ में नसीरुद्दीन के वजीर अलगू खां ने हजारों मेवों का कत्ल कराया था। इसके बाद ई. सन् १२६७ में अलगू खां ने (जो उस समय बलबन नाम से बादशाह बन गया था) लगभग एक लाख मेवातियों का कत्ल कराया था। मराठों एवं अंग्रेजों ने भी इनका बहुत दमन किया। भारत स्वतन्त्रता के बाद इस्लामी कट्टरपंथियों के द्वारा भड़काये जाने पर यहाँ के मेवों ने भी उपद्रव किया। उस समय भरतपुर जिले के अन्तर्गत बहुत दंगे हुए। यह सब अंग्रेजों की चाल थी।

खानजादा पहले यादव थे -

खानजादा मेव स्वयं को राजा यदु का वंशज कहते हैं। राजा यदु मेवात क्षेत्र के अधिपति थे, जिनके वंशज यादव कहलाये। यादव चन्द्रवंशी राजपूत हैं। इस वंश का बवनपाल (विक्रम संवत् ११५० – १२१६) बयाना में राज्य करता था, जिसका चौथा वंशज 'अघनपाल' तिजारा का अधिपति था। इसका पौत्र 'लखनपाल' फिरोजशाह तुगलक के राज्यकाल में मुसलमान हो गया और सम्पूर्ण मेवात क्षेत्र को स्वाधीन कर लिया। सन् १३८८ में फिरोजशाह की मृत्यु हो जाने पर बहादुरशाह नाहर ने उसके गुलाम-विद्रोह में साथ दिया था और उनके साथ सम्बन्ध स्थापित कर लिया था अतः ये लोग खानजादा (गुलाम) कहलाने लगे किन्तु ये स्वयं को राजा यदु का वंशज कहते हैं एवं मेवात क्षेत्र में सम्मानजनक दृष्टि से देखे जाते हैं। इस्लाम धर्म का पालन करते हुए भी इनके वैवाहिक-संस्कार हिन्दू-पद्धति के अनुसार होते हैं।

श्री सबरंग खान पाहट, ग्राम – सबलाना से प्राप्त

मेवों को पहले मेवड़ा कहा जाता था, जिनका निकास मेवाड़ एवं मारवाड़ से बताया जाता है। मेव जाति के बाहुल्य से यह क्षेत्र मेवात के नाम से जाना जाता है। मेवात क्षेत्र के अन्तर्गत भरतपुर, नगर, अलवर का कुछ क्षेत्र, हरियाणा राज्य में गुड़गाँव, मेवात, फरीदाबाद एवं पलवल का कुछ क्षेत्र आता है। मथुरा जिले के कुछ गाँव जिनकी भाषा मेवाती, जो मेवाड़ी अथवा मारवाड़ी से मिलती-जुलती है। पूर्व में इनका खान-पान, वेष-भूषा, विवाहादि हिन्दूधर्म के अनुसार होते थे। आज भी इनके विवाह में चाक-पूजन होता है एवं घर के वृद्धों के, पूर्वजों के हिन्दू नाम प्राप्त होते हैं। कुछ समय पहले तक ये लोग सभी हिन्दू-पर्वों को मनाया करते थे किन्तु अब

हजरतों (धर्म-गुरुओं) द्वारा जमाते (धर्म-प्रचारकों) के माध्यम से इन्हें धर्म के प्रति कट्टर बनाया जा रहा है। मदरसों के माध्यम से दी जा रही धार्मिक-शिक्षा कुरान शरीफ एवं हदीशादि का अध्ययन-अध्यापन होता है। परिवार नियोजन को अहमियत न देते हुए व धर्म की अभिवृद्धि हेतु जनसंख्या-वृद्धि में इनकी विशेष रुचि है। 'एक ही परिवार' कई गाँव बसाने की क्षमता रखता है। इसीलिए अधिकतर इनके गाँवों में एक ही गोत्र के लोग मिलते हैं। डेमरोट, छिरकलोट, बाघोडिया, बालोत, पहाट, नाई मेव, दहगल, पुंगलोट, इलोट, बारह पाल, तेरह पल्लाकड़ा, पाहट.....ऐसे अनेक गोत्र इनमें पाये जाते हैं। प्रायः एक गाँव पूरा एक ही गोत्र का होता है। ब्रज का बहुत सा भाग मेवात क्षेत्रान्तर्गत है, बलात् धर्म परिवर्तन द्वारा यहाँ के हिन्दुओं को मेव बनाया गया। भारतवर्ष को एवं ब्रजभूमि को भी नष्ट करने में हम हिन्दुओं की ही भूमिका रही।

जो धाम, दया, करुणा का ऐसा स्वरूप है कि अक्षम्य महापातकियों को भी अपनी गोद में रखता है।

सिय निंदक अघ ओघ नसाए।
लोक बिसोक बनाइ बसाए॥ (रा.च.मा.बाल. १३)

यह इस भूमि की उदारता है, जगज्जननी परम्बा श्री जानकी जी को चारित्रिक कलंक लगाने वाले उन महद् अपराधियों को भी विशोक (शोकरहित) बनाकर अपनी गोद में निवास दिया और दूसरी ओर हम लोग गाय कटे तो हिन्दुत्व जाग्रत नहीं होता, संस्कृति, सभ्यता के नाश पर भी हिन्दुत्व जाग्रत नहीं होता और वह हिन्दू भाई जिसे बलात् धर्मपरिवर्तन कराया गया हो, यदि पुनः स्वधर्म (हिन्दू धर्म) लेना चाहे तो हिन्दुत्व जाग्रत हो जाता है, झट कट्टरता से कह देते हैं, हम तुम्हें स्वीकार नहीं करेंगे।

ऐसा कितनी बार हमारे देश में हुआ और हो रहा है।

हिन्दू कितना संकुचित हो गया!

यद्यपि यावनी प्रभाव से मेवात क्षेत्र में अधिकांश ब्रजवासी यवन बन गये हैं किन्तु अब भी वे स्थान की मर्यादा को मानते हैं।

जैसे अञ्जनी धाम मेवात क्षेत्र में है किन्तु वहाँ के मेव स्थानीय मर्यादा व महत्ता स्वीकार करते हैं।

इसके अतिरिक्त –

मेवात में पावसर

हरियाणा प्रान्त के हथीन-ब्लॉक में, कोट गाँव से आलीमेव की ओर 'पावसर' गाँव स्थित है। जनश्रुति के अनुसार यह गोचारण क्षेत्र है, जहाँ श्यामसुन्दर गैया चराने आते थे, यहाँ गायों को जल पिलाया था। आज भी ऐसी मान्यता है कि यदि किसी की गाय दूध न दे तो यहाँ लाकर गाय के थन का स्पर्श करने से वह दूध देने लगती है।

कुछ लोग इस गाँव को "नार" नाम से भी जानते हैं, उनका कथन है कि यह ब्रज-परिक्रमा का "नार" है। 'नार' अर्थात् यहाँ से परिक्रमा लौटकर आती है और कुछ इसे चौखटा भी कहते हैं। जिस भी नाम से पुकारें, यह गोपाल का गोचारण क्षेत्र है।

खजुरारी कुण्ड

ब्रजमण्डल की सीमा पर हथीन तहसील में बहीन गाँव स्थित है। बहीन गाँव में ही है खजुरारी कुण्ड। यह श्रीकृष्ण की गोचारण भूमि है। यहाँ के ग्रामवासियों की मान्यता है कि इस कुण्ड का निर्माण गोमाता के खुरों से खुदकर हुआ। श्रीमद्भागवतजी में भी श्रीकृष्ण की गोचारण लीला में गो-पद से पृथ्वी के खुद जाने की चर्चा है।

युगलगीत में गोपिकाओं ने कहा है –

व्रजभुवः शमयन् खुरतोदं वर्ष्मधुर्यगतिरीडितवेणुः॥
(श्रीमद्भागवत १०/३५/१६)

आज भी यहाँ के ब्रजवासी बहुत श्रद्धापूर्वक इस कुण्ड की पूजा-परिक्रमा करते हैं। यह सभी मनोरथों को सिद्ध करने वाला कुण्ड है। पूज्या गो-माता की स्मृति में यहाँ आज भी एक गोशाला में गायों की सेवा हो रही है, जिसे कान्हा दादा की गोशाला के नाम से जाना जाता है।

किसने न भीख मांगी बरसाने लेके झोली।
ये नाचती औ गाती मंगतों की फिरती टोली॥

'वास्तविक ब्रजाराधना' में बाधक 'भेदबुद्धि'

'रसीली ब्रजयात्रा भाग -२' से संग्रहीत

संकलनकर्त्री - बालसाध्वी गौरीजी, मानमन्दिर, बरसाना

विदेशी-आक्रान्ताओं से कहीं अधिक हानि हुई देशी-आक्रान्ताओं अर्थात् साम्प्रदायिक संकीर्ण विचारकों के द्वारा। आज समाज की जो विकृत दशा है वह अवर्णनीय है। सम्पूर्ण हिन्दू समाज विघटित है, इसीलिए भारतवर्ष शक्तिहीन हो गया, इसके दोषी उपदेशक व प्रचारक भी हैं, चाहे वे धर्माचार्य हों अथवा लोकपति (नेता) हों। कहने को देश विकास कर रहा है, पर विकास के स्थान पर विनाश ही हो रहा है।

भारतवर्ष का गौरव है– हमारी आध्यात्मिकी पावन परम्परा। विकास के धोखे में यदि हमारे द्वारा अपने अध्यात्म का ही विनाश हो गया तब क्या सिद्ध होगा, विकास अथवा विनाश?

अतः भारतीय संस्कृति व संस्कारों का संरक्षण करते हुए, धार्मिक भावनाओं को आहत न करते हुए, विकास पथ पर चलें, पश्चिम की विलासिता का अंधानुकरण न करें। क्योंकि संस्कारों का एक समुदाय ही संस्कृति है, जो धर्म का आधार है। संस्कार-शून्य धर्म कैसा? धर्म क्या है? धारण करने योग्य बातें ही धर्म हैं। संकीर्णताओं ने हमारे धर्म को कलंकित कर दिया। बहुधा बात-बात में लोग धर्म-निरपेक्ष बन जाते हैं; अरे ! धर्मनिरपेक्ष क्यों बनते हो, साम्प्रदायिक संकीर्णता से निरपेक्ष बनो।

आज साम्प्रदायिक संकीर्णताएँ एवं ब्रज-वृन्दावन के विकास के नाम पर हो रहे आधुनिकीकरण, ब्रज संस्कृति के लिए, यहाँ की पावन परम्पराओं के लिए एवं यहाँ के कृष्ण भक्ति परायण समाज के लिए एक अभिशाप है। प्रतीत होता है आज की इस भयावह स्थिति को श्री हरिराम व्यास जी ने अपनी दिव्य दृष्टि से पहले ही जान लिया था –

अब सांचे ही कलियुग आयौ ।
मथुरा खुदति कटत वृन्दावन, मुनि जन सोच उपज्यौ।
इतनौ दुःख सहिबे को काजै, काहे को व्यास जिवायौ॥

(व्यासवाणी पूर्वार्द्ध -२३६)

आज ब्रज वृन्दावन में चारों ओर भव्य विलास भवनों एवं बहुमंजिली इमारतों के निर्माण की प्रतिस्पर्धा से उपेक्षित ब्रजभूमि की वन सम्पदा, देव तुल्य पर्वत, कुण्ड, सर एवं श्री यमुना जी इस विकृत स्वरूप में आ गईं।

मत भूलो कि ब्रजभूमि मात्र दर्शनीय न होकर उपासनीय भी है। यहाँ के प्रत्येक वन, पर्वत, सरिता, वृक्ष, खग एवं रज-कण कृष्ण प्रेम प्रदान करने में समर्थ है अतः ब्रज रज निष्ठ सन्त महापुरुष धाम की दिव्य लता-द्रुम, शुक-पिक, मृग, मयूरादि की भी वन्दना करते हैं और उनसे श्रीजी के चरणों में अक्षय अनुराग की याचना करते हैं –

हा कालिन्दि त्वयि मम निधिः प्रेयसा क्षालितोऽभूद्,
भो भो दिव्याद्भुततरुलतास्तत्करस्पर्शभाजः।
हे राधाया रतिगृहशुका हे मृगा हे मयूरा,
भूयो भूयः प्रणतिभिरहं प्रार्थये वोऽनुकम्पाम्॥

(श्रीराधासुधानिधि २६२)

यद्यपि आज हमारे समाज में इस दिव्य धाम निष्ठा का दर्शन दुर्लभ हो गया है, केवल वाणी तक सीमित रह गई है, क्रिया में नहीं है। यदि वर्तमान में यह निष्ठा पूर्ववर्ती सन्त महापुरुषों की तरह पुष्ट होती तो आज ब्रज वृन्दावन के दिव्य वन, उपवन, गिरि, सरोवर एवं श्रीयमुना जी का वही पुरातन स्वरूप सामने होता। यद्यपि कुछ सन्त वैष्णव आज भी उस निष्ठा में विराजमान हैं और वे सतत् ब्रज के संरक्षण, सम्वर्धन व सौन्दर्यीकरण की ओर विशेष तत्पर हैं एवं उनके प्रबल प्रयत्न से ही कहीं-कहीं ब्रज का प्राचीन स्वरूप (वन, पर्वत, सरोवर) सुरक्षित है और उनका दर्शन हमको प्राप्त हो पा रहा है। यद्यपि ब्रज सेवा का यह पावन प्रयत्न सर्व समाज को करना चाहिए और वैष्णव समाज को तो अपना परम कर्तव्य समझ कर इस पावन कार्य में तत्पर होना चाहिए।

इसीलिए तो श्रीमच्चैतन्य महाप्रभु जी की आज्ञा से श्री रूप-सनातन गोस्वामी पाद ने श्रीधाम वृन्दावन में निवास कर ब्रज सेवा कर ब्रजोपासना की, लुप्त तीर्थों का उद्धार कर उनका संरक्षण, सम्वर्धन किया।

तभी तो श्री व्यास जी ने गाया –

बिहारिहिं स्वामी बिनु को गावै।
बिनु (हित) हरिबंसहि राधिकाबल्लभ को रस रीति सुनावैं॥
रूप सनातन बिन को वृन्दाविपिन माधुरी पावै।

आज विश्व में करोड़ों की संख्या में कृष्ण भक्त समुदाय है और उनमें लाखों की संख्या में ऐसे भी हैं जो ज्ञान की दृष्टि से, विचार की दृष्टि से, अर्थ की दृष्टि से, सर्वथा सम्पन्न हैं, उसके पश्चात् भी ब्रज संकृति का इतना बड़ा ह्रास, यह आश्चर्य की बात है, इसका मूल कारण है आध्यात्मिक धरातल पर पारस्परिक विद्वेष और संकीर्णता की भावनाएं। हमारे पूर्ववर्ती आचार्य महापुरुष इन विघटनकारी भावनाओं से सर्वथा मुक्त थे। परस्पर में सौहार्द और सद्भाव चरम पर था।

स्मरण करें हमारे पूर्वाचार्यों की कितनी निर्मल उपासना थी। महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी ने श्रीनाथजी की सेवा की श्रीमद्रघुनाथदासगोस्वामीपाद की सम्मति से, गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी के सेवा काल में श्रीरूप, सनातन गोस्वामी जी व समस्त गौड़ीय वैष्णव पधारे और आज भेदवादिता के बढ़ने से स्थिति यह है कि सभी सम्प्रदाय रेल की पटरी बन गये। दोनों पटरियाँ एक साथ एक ही दिशा में चलती हैं किन्तु एक दूसरे से कभी मिल नहीं सकती हैं। यही हम सबकी स्थिति है। यद्यपि सर्व धर्म, पंथ, सम्प्रदाय के मूल उपास्य एक ही है किन्तु फिर भी हम रेल की पटरी की भाँति अलग-अलग हैं। साम्प्रदायिक-भेद इतना अधिक बढ़ा है कि आज आचार्यों पर भी आरोप करने लगे। जिसके कारण पारस्परिक आचार्य ग्रंथों व आचार्य परम्पराओं में अभाव बुद्धि रखकर अपने अध्यात्म पथगामी होने पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। वस्तुतः सर्व ग्रन्थ, सन्त, पथ, परम्परा एवं सम्प्रदाय आदि का एकमात्र तात्पर्य विवाद मुक्त होकर विषमताओं से रहित होकर भगवच्चरण की शरणागति में ही है।

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते॥

(कठोपनिषद् १/२/१७)

भगवदाश्रय ही सबका सार है। श्रीमद्वल्लभाचार्यमहाप्रभु के शुद्धाद्वैत का सार भी **श्रीकृष्णाश्रय** ही है। दार्शनिक दृष्टि से भले आपने शास्त्रार्थ किये किन्तु लक्ष्य केवल **कृष्ण-शरणागति** का ही था।

दार्शनिक मतभेदों को लेकर भेदवाद को नहीं बढ़ाना चाहिए। 'दार्शनिक-पक्ष' बौद्धिक-पक्ष है, इसमें विवेकी उपासक को उलझना नहीं चाहिए।

'साम्प्रदायिक भेदजन्य विषमता' जाग्रत कालकूट विष है, 'जाग्रत' से तात्पर्य है – जो जीवित है, अनवरत कार्यरत है। कालकूट विष का प्रभाव तो श्री शिवजी ने समाप्त कर दिया जिससे विश्व रक्षा हुई किन्तु इस भेदजन्य विषमता रूप कालकूट को समाप्त करने का तो कुछ भी उपाय दिखाई नहीं देता; जो न केवल भारत ही प्रत्युत सम्पूर्ण संसार में व्याप्त हो रहा है। इस विष की उत्पत्ति का कारण है शास्त्र मत का अन्यथा रूप में स्थापन। भगवान् ने संसार का सृजन किया और सनातन काल तक समाज को सुव्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने के लिए शास्त्रीयसिद्धान्त प्रदान किये और निर्देश किया – **"तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ"** (श्रीमद्भगवद्गीताजी -१६/२४)

परन्तु जब शास्त्रीय सिद्धान्त के अनुरूप हम स्वयं को ढालते हैं तो सामाजिक और व्यावहारिक जीवन में सौहार्द व माधुर्य का संचार होता है और जब अपनी मिथ्या मान्यताओं की पुष्टि के लिए अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए शास्त्र को अपने अनुरूप ढालने का कुत्सित प्रयत्न करते हैं तो समाज में कटुता व विषमताओं का कालकूट विष पैदा होता है। जोकि सनातन संस्कारों का, परम्पराओं का विनाशक सिद्ध होता है। जैसे विवाह एक शास्त्रीय परम्परा है और उसका तात्पर्य निवृत्ति है, न कि विलासिता, भोगवादिता अर्थात् संयमित और नियन्त्रित जीवनचर्या पूर्वक भजनोन्मुख होना है न कि भोग परायण होकर आत्म नाश करना। श्रीकृष्ण के द्वारा यह सिद्धान्त स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट है –

लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्यास्तु जन्तोर्न हि तत्र चोदना। व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञसुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा॥ (श्रीमद्भागवतजी ११/५/११)

हमारी वैदिक संस्कृति में विवाह भी एक संस्कार है। मैथुन से निवृत्ति कराना ही विवाह का लक्ष्य है, जिससे कि मनुष्य एक स्त्री से ही सम्बन्ध रखे, ऐसा न हो कि वैषेयिकता के बढ़ते वह श्वानवृत्ति ही ले ले, मांस भक्षण के लिये लोग पशु-हिंसा करने लगे अतः हिंसा-निवृत्ति के उद्देश्य से यज्ञपशु के स्पर्श का विधान बनाया, मद्यपान की निवृत्ति के लिये सौत्रामणि यज्ञ में सुरा सूँघने अथवा सेवन की भी जो व्यवस्था है, उसका लक्ष्य है लोगों की उच्छृंखल प्रवृत्ति पर नियंत्रण किन्तु मनुष्य निवृत्ति पर विचार करता नहीं, यही सोचता है कि शास्त्रों ने भी प्रवृत्ति अर्थात् विषयभोग, मांस-भक्षण, मदिरापान की आज्ञा दी है। शास्त्र में समाज को चार जातियों में विभाजित किया जिसका तात्पर्य सामाजिक व्यवस्था है क्योंकि भेद के बिना व्यवहार (व्यवस्था) सम्भव नहीं। व्यवहारिक जीवन में, सर्वत्र पिता, पुत्र, भ्राता, माता, बहन, पत्नी, वैद्य, शिक्षक अधिवक्ता आदि भेद हैं परन्तु इस भेद का तात्पर्य व्यवस्था में है न कि विषमताओं में। इसी प्रकार भारतवर्ष में जातिव्यवस्था कल्याण की दृष्टि से बनाई गई है और यह किसी मानव की कल्पना नहीं अपितु स्वयं भगवान् के द्वारा स्थापित है जिससे वर्ण व्यवस्था के अनुसार लोग कर्मों का आचरण करें –

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीताजी ४/१३)

अर्थात् गुण व कर्मानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र – ये वर्ण व्यवस्था मेरे ही द्वारा बनाई गई है।

ब्राह्मण को अध्ययन–अध्यापन (शिक्षा विभाग)
क्षत्रिय को युद्ध, शौर्य, पराक्रम (रक्षा विभाग)
वैश्य को कृषि, गोरक्षा, व्यापार (धनार्जन विभाग)
शूद्र को सबकी सेवा (सेवा विभाग)

सेवा वह साधना है जिससे भगवान् अतिशीघ्र प्रसन्न होते हैं। **"यद्वृत्त्या तुष्यते हरिः"** (श्रीमद्भागवतजी ३/६/३३) समाज के लाभ हेतु भगवान् ने चातुर्वर्ण्य की रचना की, जिससे सभी व्यवस्थायें सुचारु रूप से चलती रहें किन्तु स्वार्थी लोगों ने अपने-अपने स्वार्थ हेतु भेदबुद्धि बढ़ाकर उन्हें कलुषित कर विषमता का संचार कर समाज का विनाश किया। वोट-बैंक बनाकर प्रजातन्त्र को दूषित किया। इससे वैदिक संस्कृति "सर्वे भवन्तु सुखिनः" का पावन लक्ष्य बाधित हुआ है। आज प्रायः मानव का रिसीवर (श्रद्धात्मक ग्राहक पक्ष) दूषित है अतः सबको राग-द्वेष में बदलकर रख दिया। इसी प्रकार सम्प्रदाय-व्यवस्था भगवत्प्राप्ति का सीधा मार्ग है, जिस पर आँख बंद करके दौड़ते हुए चले जाओ। न स्खलन का भय है, न पतन का ही। **"धावन् निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह॥"** (श्रीमद्भागवतजी ११/५/११)

जिस प्रकार समाज में जाति-प्रथा एक विष बन गई, भेद-कलह का कारण बन गई, उसी प्रकार जो अनन्यता भगवत्प्राप्ति का सीधा मार्ग थी, गृहीता (रिसीवर) दूषित होने से वह समाज के लिए विष बन गई। अनन्यता के चक्कर में एक वैष्णव दूसरे वैष्णव का अपराध करने लग गया, सम्पूर्ण धर्म का स्वरूप तामसी हो गया। यज्ञ, व्रत, पाठ, पूजा, सब तामसी हो गये। समाज की जाति-व्यवस्था को लोकपतियों (नेताओं) ने दूषित किया तथा सम्प्रदाय-व्यवस्था को अनन्यता के चक्कर में धर्म के ठेकेदारों ने दूषित कर दिया। अरे, क्या अपने पूर्वाचार्यों की वाणी और लक्ष्य भी भूल गये !! आचार्यवाणी अभावोत्पत्ति के लिए थोड़े है, यह तो समझने वालों की अल्पज्ञता है कि वे उनके भाव की गहराई में तो उतर नहीं पाते, शब्दों में सिमिट जाते हैं।

जिस प्रकार समुद्र-मंथन से विष-प्राप्ति लक्ष्य न रहते हुए भी हुई, उसी प्रकार सम्प्रदाय-स्थापना भेद रूप विष प्राप्ति के लिये न होकर भगवदाराधन रूपी अमृत-प्राप्ति के लक्ष्य से हुई किन्तु उससे सर्वप्रथम भेदभाव रूपी विष उत्पन्न हुआ, जिससे सम्पूर्ण समाज विषाक्त हो, अपराध से दग्ध हो उठा।

श्रीयुगललीलारस से अभिसिंचित ब्रजभूमि

रसीली ब्रजयात्रा भाग -२' से संग्रहीत

संकलनकर्त्री - बालसाध्वी हरिप्रेमाजी, मानमन्दिर, बरसाना

एक बार पूज्य बाबा महाराज के सद्गुरुदेव परम श्रद्धेय श्री श्री प्रियाशरण बाबा महाराज से किन्ही सज्जन ने पूछा – ब्रज श्री राधा-माधव की लीला-भूमि है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है?

पूज्य बड़े बाबा महाराज ने बहुत नम्रतापूर्वक कहा – आपके प्रश्न का हम अवश्य उत्तर देंगे किन्तु पहले आप बताएं, आप अपने पिता के ही पुत्र हो, इसका क्या प्रत्यक्ष प्रमाण है?

बहुत नया प्रश्न था अतः प्रत्यक्षवादी महाशय तो मूक ही हो गये।

तब पूज्य बड़े महाराज जी ने कहा – देखिये महाशय, सभी बातें प्रत्यक्ष नहीं होती हैं और फिर हमारा सम्पूर्ण अध्यात्म परोक्ष पर ही स्थित है। यह विश्वास का मार्ग है। यदि आपको प्रत्यक्ष प्रमाण ही चाहिए तो साढ़े पाँच हजार वर्षों से चली आ रही अति प्राचीन परम्पराएं क्या लीला का प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं हैं ?

आज भी नन्दगाँव-बरसाना का वही प्राचीन सम्बन्ध जिसे वहाँ का बालक-बालक गुनगुनाता है। "बरसानो असल ससुराल हमारो न्यारो नातो"।

श्री राधा-कृष्ण विवाह के बाद आज तक बरसाने की कोई बेटी नन्दगाँव में ब्याही नहीं जाती, इस भाव से कि नन्दगाँव-बरसाना के मध्य अब मात्र श्री राधा-कृष्ण विवाह का अनूठा सम्बन्ध ही रहेगा। साढ़े पाँच हजार वर्ष पुरानी ये जीवन्त परम्पराएं क्या इन लीलाओं का प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है? बरसाना-नन्दगाँव की लठामार होली क्या प्रत्यक्ष नहीं है?

क्या कहीं और भी है इतनी प्राचीन बातें या परम्पराएं, जो अब तक जीवन्त हों?

औरंगजेब ने तो वृन्दावन-मथुरा का नाम तक बदल कर मोमिनाबाद व इस्लामाबाद कर दिया था किन्तु कितने दिन जीवित रहे ये नाम? आज तक ब्रज के सभी गाँवों के नाम श्रीकृष्ण लीला से सम्बद्ध हैं।

तस्माच्चिन्ता न ते कार्या वज्रनाभ मदाज्ञया।
वासयात्र बहून् ग्रामान् संसिद्धिस्ते भविष्यति॥
कृष्णलीलानुसारेण कृत्वा नामानि सर्वतः।
त्वया वासयता ग्रामान् संसेव्या भूरियं परा॥

(श्रीमद्भागवतजी उत्तर माहात्म्य १/३६, ३७)

महर्षि शाण्डिल्य ने कहा – बज्रनाभ! तुम मेरी आज्ञा से ब्रज को पुनः प्रकट करो।

श्री कृष्णलीलानुसार ब्रज के ग्रामों, वनों का नामकरण करो।

सच्चिदानन्दभूरेषा त्वया सेव्या प्रयत्नतः।
तव कृष्णस्थलान्यत्र स्फुरन्तु मदनुग्रहात्॥

(श्रीमद्भागवतजी उत्तर माहात्म्य १/४०)

यह भूमि सच्चिदानन्दमयी है, प्रयत्नपूर्वक यहाँ निवास करते हुए इसकी सेवा करो।

मेरे अनुग्रह से तुम्हें सभी लीला-स्थलों पर हुई लीला का ज्ञान हो जायेगा।

ऐसा ही हुआ। बज्रनाभ जी के बाद आज से साढ़े पाँच सौ वर्ष पूर्व श्री नारायण भट्ट जी महाराज के द्वारा भी इसी पद्धति से ब्रज का पुनर्प्राकट्य हुआ।

अब यह समस्या पुनः आ गई। स्थल, स्थल-ज्ञान सब कुछ लुप्त हो गया। प्रत्यक्षदर्शी कोई रहा नहीं, ऐसी स्थिति में महापुरुषों की अनुभूत वाणी के आधार पर ही लीला-रहस्य का उद्घाटन सम्भव है।

सीमांत ब्रज के महत्व को शास्त्रीय प्रमाण सहित प्रकाशित करने वाले ग्रन्थ रसीली ब्रजयात्रा भाग - २ में भी अधिकांश सीमावर्ती ग्रामों का इतिहास, अष्टछाप के सुकवियों की वाणी पर ही आधारित है। नाम साम्य से ही गाँवों की लीला का लेखन हुआ है। नाम साम्य के आधार पर आज भी कितने ग्रामों की लीला है।

यह न भूलें कि –

ब्रज-बीथिन, पुर-गलिनि, धरै-घर, घाट-बाट सब सोर मचायौ।

(सूर सागर)

श्री सूरदास जी तो कहते हैं – इस भूमि का कोई नगर, पुर, वन, वीथि – कहाँ तक कहें कोई घर और कोई घाट शेष नहीं रहा है, जहाँ लीला न हुई हो।

अतः यहाँ के पर्वत, कुण्ड, सरोवर, वन, उपवन एवं ग्रामों का नाम लीलानुगत ही है। जैसे – श्रीकृष्ण के अन्तर्धान होने से ग्राम का नाम 'खोह', मथुरा प्रस्थान के समय शीघ्र (सी) परश्वः (परसों) आने के आश्वासन से ग्राम का नाम 'सी पलसों', दूध की लीला होने से 'पयगाँव', खम्ब के गढ़ने से 'खाम्बी', वनचर होने से 'वनचारी', सत्राजित का वास होने से 'सतवास', बिछुर जाने से 'बिछोर', जहाँ श्री राधारानी ने स्वप्न देखा वह स्थल विशेष 'सुपाना' एवं नन्दबाबा का कोष होने से 'कोसी' हुआ। इस प्रकार सभी ग्रामों के नाम लीला से हैं। क्या श्री गिरिराज जी गोवर्धनोद्धरण लीला के प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं हैं? काम्यवन की चरणपहाड़ी, भोजनथाली, स्खलिनी शिला, बरसाना की खोर साँकरी (जहाँ की शिला दही के गिरने से आज भी स्निग्ध है), छोटे भरने की मुकुट शिला, ...सम्पूर्ण ब्रज आज भी साढ़े पाँच हजार वर्ष प्राचीन धरोहर से भरा हुआ है। ऐसे अनेक प्राचीन लीला चिन्ह हैं जो श्री युगल सरकार की त्रैकालिक लीला का साक्ष्य दे रहे हैं और न केवल कृष्णावतार में यह प्रथम बार हुआ, रामावतार का सेतुबन्ध भी तो आज दर्शनीय है, जो श्रद्धाविहीनों को मात्र कल्पना ही लग रहा है। चित्रकूट में रामशय्या (जहाँ श्रीराम जी शयन करते), स्फटिक शिला, लक्ष्मण टेकरी (जहाँ लक्ष्मण जी बैठकर पहरा देते) क्या श्रीराम लीला का प्रमाण नहीं है?

श्रद्धाविहीन के लिए तो "भगवान् ही नहीं है" फिर लीलाचिन्ह कैसे? भगवान् उपासकों के लिए ही छोड़ते हैं ये लीला चिन्ह। ये लीलाचिन्ह जो श्रद्धाविहीन जनों को देखने में प्राकृत प्रतीत होते हैं किन्तु श्रद्धालुओं को तो इन्हीं में दिव्यता की अनुभूति होती है।

क्या कारण है न केवल भारत से प्रत्युत देशान्तरों से कितने ही वैदेशिक प्रतिवर्ष इस भूमि की ओर दौड़ते हैं? नाले की तरह बहने वाली यमुना में भी क्यों आज यमद्वितीया पर श्रद्धालुओं का समुद्र उमड़ पड़ता है? क्यों एक साधारण सी पहाड़ी के रूप में दिखने वाले गिरिराज की परिक्रमा का क्रम कभी भंग होता दिखाई नहीं देता?

भाव का तीव्रतम आवेश तो देखो – नाचते-गाते हुए ही नहीं, १०८ शिलाओं से दण्डवती करने वाले परिक्रमार्थियों का मन उस अनन्त कष्ट और असुविधा में भी आनन्द से गुनगुनाता है –

"छटा तेरी तीन लोक से न्यारी है गोवर्धन महाराज"

क्या कारण है कि "टेढ़े रहत मोहन रसिया सों बोलत अटपटी बानी" के लिए प्रसिद्ध ब्रजवासियों को कहा गया – **ब्रज के परम सनेही लोग।**

गारी दै हँसि मिलत गहबरे अंतर प्रेम संजोग॥
राग रूप अक्षर बन लीला यह तिनको नित भोग।
'नागरिदास' सदा आनन्दी सुपनें हूँ नहिं सोग॥

आखिर क्या आकर्षण है **"हरि हम कब होंगे ब्रजवासी"** की भावना से कहीं भी चार पत्थर रखकर गृह रचना करने लगते हैं भावुकजन।

"जनम-जनम दीजै याही ब्रज बसिबो" (छीत स्वामी)

भावदृष्टि से देखने पर प्राकृत प्रतीत होने वाली ये भूमि, ये लीला चिन्ह ही दिव्य हो जाते हैं। धाम का अधिभूत स्वरूप तो सबको दिखाई दे रहा है किन्तु अधिदैव स्वरूप केवल अधिकारी जनों को ही दिखाई देता है। यहाँ तक कि स्वयं भगवान् के समय में भी धाम अपना अधिदैव स्वरूप प्रकट नहीं करता है।

किएँ जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बर बात।
तस मगु भयउ न राम कहँ जस भा भरतहि जात॥

(रा.च.मा.अयो. २१६)

श्रीभरतजी के लिए धाम ने जो स्वरूप प्रकट किया वह तो स्वयं श्रीरामजी के लिए भी प्रकट नहीं हुआ था। समय-समय पर इस अधिभूत धाम में ही दिव्य शब्द, गन्धादि का अनुभव भी अधिकारी जनों को होता रहा है। जैसे श्रीपाद नारायणभट्ट गोस्वामी जी को इसी धाम में **"आऊँगी-आऊँगी"** की दिव्य ध्वनि सुनाई दी। वार्ता जी में वर्णन मिलता है – एक वैष्णव को दिव्य सुगंध का अनुभव हुआ। परम रसिक श्रीबिल्वमंगलजी को इसी अधिभूत धाम में दिव्य वंशी सुनाई दी। ये सब अपनी-अपनी अनुभूति के स्तर हैं, जो भगवत्कृपा से ही होते हैं। उपासना यदि दृढ़ है तो अधिभूत धाम में ही अधिदैव का अनुभव हो जाता है।

ऐसी अनेक चमत्कारिक घटनायें इस बात को पुष्ट करती हैं।अभी हाल ही में श्री मानमन्दिर निवासी नित्यलीलालीन परम भगवदीय श्री मदन मोहन ब्रजवासी जी का नित्य श्री मानमन्दिरकी सीढ़ियों को बुहारना और गुनगुनाना –

महल राधिका का बुहारा करेंगे।
उन्हें आते-जाते निहारा करेंगे॥

साकार होता देखा गया।

दिनाँक १६ अक्तूबर २०१३ श्री राधारानी ब्रजयात्रा का प्रथम दिवस ही था, प्रातः लगभग छः बजे अपनी दैनिक सोहनी सेवा पूर्ण करने गये थे। सीढ़ी बुहारते-बुहारते किस प्रकार पार्थिव को छोड़कर नित्यलीला की सेवा में प्रवेश प्राप्त किया, यह पूर्णतः अज्ञात है। यात्रा के लौटने पर तो मान मन्दिर की सीढ़ियों से लुढ़का ब्रज रज में लिपटा प्राण रहित गात्र मात्र ही दर्शन को शेष था।

इस चमत्कारपूर्ण घटना के ठीक डेढ़ मास पश्चात् एक दूसरी अलौकिक घटना संघटित हुई। पूज्य बाबा महाराज के अत्यन्त कृपापात्र भक्ति, ज्ञान, वैराग्य के साक्षात् स्वरूप श्रद्धेय श्री सखीशरण बाबा जी महाराज जिन्हें पूज्य बाबा महाराज की सर्वाधिक सेवा, सन्निधि का सौभाग्य प्राप्त हुआ। श्रीधाम गह्वरवन के प्रति आपकी अविचल निष्ठा सर्वथा गुप्त ही थी। ७६ वर्ष की अवस्था हो चुकी थी, शरीर भी उतना स्वस्थ नहीं रहता था किन्तु मन की स्वस्थता के आगे देह की अस्वस्थता पर ध्यान नहीं दिया जाता। प्रत्येक वर्ष की तरह इस वर्ष भी उसी तैयारी से ४० दिवसीय श्री राधारानी ब्रजयात्रा करने चल पड़े । वाहन में बैठना स्वीकार नहीं था अतः पदयात्रा करते रहे। अभी दस ही दिन हुए थे कि अकस्मात् एक दिन रुग्ण हुए, धीरे-धीरे रुग्णता बढ़ती रही। औषधि सेवन से भी स्थिति सुधरने के स्थान पर बिगड़ती ही गई किन्तु यात्रा नहीं छोड़ी। ३५ दिन की यात्रा सम्पन्न हुई, स्थिति के अधिक बिगड़ते देख उन्हें गह्वरवन लाया गया। अब गह्वरवन से कहीं और जाने की इच्छा नहीं थी किन्तु स्वास्थ में कोई लाभ नहीं दिखाई दे रहा था अतः यात्रा सम्पन्न होते ही पूज्य बाबा महाराज की आज्ञा से गुड़गाँव के अच्छे हॉस्पिटल में ले जाया गया, उचित उपचार आरम्भ हुआ। अर्धचेतनावस्था में भी सतत् श्री धाम गह्वरवन और अपने परम प्रिय श्री बाबा महाराज का ही स्मरण हो रहा था। दिनाँक १० दिसम्बर २०१३ की रात्रि में सहसा पूज्य बाबा महाराज का आदेश हुआ –

अभी इसी समय सखीशरण को गह्वरवन बुला लिया जाये।

इस नियोजित योजना को कौन जानता था?

बस पूज्य श्री की आज्ञा का पालन ही हो रहा था। अगले ही दिन अस्पताल में शरीर की कुछ आवश्यक जाँच होनी थी, जो स्थगित की गई। चिकित्सकों के मना करने पर भी तत्काल ऐम्बुलेंस द्वारा रात्रि में अस्पताल से चलकर प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में लगभग तीन बजे श्री गह्वरधाम में अभी पहुँचे ही थे, सेवा में उपस्थित सन्त श्रीब्रजकिशोर जी ने श्री सखीशरण बाबा को गह्वरवन पहुँच जाने का संदेश दिया। इतना सुनते ही स्मित मुख से अपार प्रसन्नता की अभिव्यक्ति हुई। श्री माताजी गोशाला में चल रहे अखण्ड संकीर्तन में राधा नाम की ध्वनि को सुनते हुए नित्यधाम में प्रवेश प्राप्त किया। मानो गह्वरवन की प्रतीक्षा में ही प्राणों को उत्सर्ग की आज्ञा नहीं मिल पा रही थी।

क्या यह धाम के द्वारा भाव की पूर्ति नहीं है?

यह वही धाम है जहाँ बुहारी लगाते श्री श्यामानन्द जी को वृन्दावनेश्वरी श्री राधारानी का दिव्य नूपुर प्राप्त हो गया था, यही नहीं स्वयं श्री राधारानी ने अपना वह नूपुर श्यामानन्द जी के मस्तक पर विराजमान भी किया किन्तु गुरु हृदयानंद ने इसे मनमुखी तिलक कहकर धो देने की आज्ञा दी। बहुत रगड़ने पर भी जब नूपुर का चिन्ह नहीं मिटा, तब सन्तों की पंचायत में स्वयं श्री राधारानी की आज्ञा से सुबल सखा ने साक्ष्य दिया, यह स्वयं श्री राधारानी का चरण नूपुर है।

इन वृत्तान्तों से स्पष्ट होता है कि उपासकों की भाव पुष्टि व वृद्धि हेतु ही करुणामय भगवान् अवतारकाल में लीला चिन्ह छोड़ देते हैं, जिन्हें प्राकृत नहीं समझना चाहिए। ब्रज का चराचर चिन्मय है – (श्रीमद्भागवतजी १०/१५/१-११)

लता-वृक्षों द्वारा युगल सरकार की आराधना

रसीली ब्रजयात्रा भाग -२' से संग्रहीत
संकलनकर्त्री नवीनाश्रीजी, मानमन्दिर, बरसाना

आज कार्तिक शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि बुद्धवार का दिन है और कृष्ण व बलराम दोंनो ने गोचारण का हठ पकड़ लिया है। पौगण्ड अवस्था में प्रवेश क्या किया, ये दोनों पशुपाल गोपाल बन गये। गोचारण करते हुए सखाओं के साथ पुण्य वृन्दावन धाम में घूमने लगे, वंशी बजाते हुए पुष्पित वन में प्रवेश किया, जहाँ महात्माओं के मन के समान सुन्दर, स्वच्छ व निर्मल सरोवर, जिनमें विकसित कमलों की गन्ध लिए सुगन्धित, शीतल, मन्द समीर बह रही है। यहाँ का जल, वायु, प्रकृति सब कुछ बहुत स्वच्छ है। श्रीकृष्ण ने देखा कि वृन्दावन के वृक्ष भी उपासना परायण हैं। जैसे घर आये अतिथि को सुशोभित मंजूषिकाओं में उपहार दिया जाता है, उसी प्रकार ये वृक्ष अपने लाल-लाल पल्लवों की मंजूषिकाओं में सुगन्धित पुष्प व फलों का उपहार श्रीकृष्ण-बलराम के चरणों में अर्पित कर रहे हैं। श्रीकृष्ण बोले – दाऊ भैया ! आपके चरणों की समस्त देवता पूजा करते हैं क्योंकि आप देववर (देवों में श्रेष्ठ) हैं। श्री वृन्दावन धाम के लता-वृक्ष भी उपासक ही हैं, आपके इन चरणों की अर्चना कर रहे हैं। अपने पुष्प, फल आदि समर्पित करने को कितने नत हो गये हैं।

अपना जड़ धर्म दूर करने को नहीं अपितु इनका जो दर्शन कर लें, उनके तम (जड़ता) को दूर करने के लिए ये वृन्दावन के वृक्ष बने हैं। कौन कहता है कि ये जड़ हैं। ऐसी उपासना तो चर प्राणी भी नहीं कर सकते हैं।

पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ ॥ (श्रीमद्भागवतजी २/३/२२)

वे चरण तरु धर्म को प्राप्त हो जाते हैं जो भगवदुपासना का कार्य नहीं करते हैं।

दाऊ भैया इन वृक्षों की उपासना तो देखो, श्वेत, रक्त, पीत, पाटल.....कितने ही रंग के पुष्प-फल आपको भेंट कर रहे हैं।

वन की कुञ्जन कुञ्जन डोलन।
निकसत निपट साँकरी वीथिन परसत नाहीं निचोलन ॥ (श्रीहितचतुरासी - ३४)

जिस वन की कुञ्ज से राधा-माधव विहार करते हुए निकलते हैं, अत्यन्त सँकरी गलियों में उलझी हुई लता-वल्लरियाँ भी सिमिट कर एक ओर हो जाती हैं, कहीं युगल के पट भूषण से हमारा स्पर्श होकर लीला में व्यवधान न हो जाये। आश्चर्य है, यहाँ के भ्रमर भी उपासक हैं। हे आदिपुरुष! गोपलीला में छिपे हुए आपको ये पहिचान गये हैं अतः अनन्त ब्रह्माण्डों को पवित्र करने वाला आपका सुयश गाते हुए उपासना कर रहे हैं। सत्य तो यह है कि भ्रमर के रूप में ये स्वयं श्रेष्ठ भक्त-मुनिगण ही हैं। हे अनघ ! (अनघ अर्थात् जो अपने आश्रितजनों के अघ पर ध्यान न दे। अत्यधिक दयावान को ही अनघ कहते हैं। श्रीकृष्ण तो पाण्डवों को ही आश्रय दे सके किन्तु श्री दाऊ जी ने तो दुर्योधन पर भी दया किया। यहाँ से ही दाऊ के साथ दयाल शब्द की प्रसिद्धि हुई।) आपके स्वागतार्थ यहाँ के मयूर नृत्य कर रहे हैं। हरिणियाँ गोपियों के समान अपनी प्रेम भरी चितवन से निहार रही हैं। यहाँ की कोकिलाओं का गान तो सुनिये। जो आपके लिए स्वागतगान कर रही हैं। यह है उपासकों का वृन्दावन, जहाँ के पशु-पक्षी, लता-तरु, सबका जीवन ही उपासनामय है। आपका स्पर्श प्राप्त करके धन्य हो गयी यहाँ की धरणी, धन्य हो गया यहाँ का चर-अचर। जो आपका स्पर्श प्राप्त करके स्वयं का सौभाग्य गा रहे हैं। यहाँ की नदियाँ, पर्वत, सरोवर, वन-उपवन सब आपकी दया-दृष्टि से कृतार्थ हो रहे हैं। एक ओर ग्वाल-बालों ने कृष्ण यश गाना आरम्भ किया तो दूसरी ओर भ्रमररूपी गायकों के समूह ने राग-रागिनियाँ छेड़ीं व मधुर संगीत सुनकर श्रीकृष्ण-बलराम ने भी तान छेड़ी। अब तो हंसों ने भी क्वणन आरम्भ किया। हंसों

का क्वणन मणि नूपुर के समान होता है। इस अद्भुत संगीत गोष्ठी में जब मयूर नृत्य करते हैं, तब श्यामसुन्दर उनका अनुकरण करने लगते हैं। मयूरों की देखा-देखी कृष्ण भी दोनों घुटनों के बल झंगा को पंखवत् ऊपर तानकर नृत्य कर उठे। तब तक ग्वाल-बाल ताली पीट-पीटकर हँसने लगे –

"कन्हैया नंगो है गयो, कन्हैया नंगो है गयो।"

अनुकरण लीला में श्रीकृष्ण बहुत निपुण हैं किन्तु वृन्दावनेश्वरी श्रीराधारानी जब गाती हैं, मधुर तान लेती हैं तब श्याम सुन्दर मौन हो जाते हैं। न अनुकरण की क्षमता रहती है न स्पर्धा की सामर्थ्य है क्योंकि इस मधुर वाणी की न समानता है न अतिशयता। बस मूक होकर श्रवण सुख लेते हैं।

राधे तेरे गावत कोकिला गन रहें री मौन धरि।
कोटि मदन कौ लियो है मन हरि॥
कुञ्ज महल में मोहन मधुरी तान राखी वितान तरि।
'गोविंद' प्रभु रीझ हृदै सों लगाइ लई वृषभानकुंवरि॥

(गोविन्द स्वामी)

सख्यरस-रसिक 'गोपालजी'

एवं निगूढात्मगतिः स्वमायया गोपात्मजत्वं चरितैर्विडम्बयन्।
रेमे रमालालितपादपल्लवो ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः॥

(श्रीमद्भागवतजी१०/१५/१९)

वह स्वयं भी तो सखा बन गया यहाँ। माधुर्य में बाधक होने से भगवत्ता को तो योगमाया द्वारा छिपा ही दिया। एक गोप बालक का अनुकरण करते हुए नरलीला करने लगा। भगवान् बनकर आयेगा तो किसी देव-स्थान पर ही बिठा दिया जायेगा, तब कौन उसे गाली दे सकेगा, कौन घोड़ा बना सकेगा? तब तो एकासन से बैठे-बैठे वेदस्तुति ही सुननी पड़ेगी। यह तो इस भूमि की महिमा है, यहाँ पिटने में उसे जो आनन्द है, वह वैकुण्ठ में लक्ष्मी के साथ रमण करने में भी कहाँ ? फिर लक्ष्मी के भाग्य में तो चरणसंवाहन ही है, ऐसी सर्वोच्च शक्ति द्वारा सेवित होने पर भी मन नहीं लगा और यहाँ गँवारों में भूल गया सब कुछ। 'गँवार' शब्द से यह न समझें कि यहाँ मात्र असभ्यता ही है। जहाँ नदी के रूप में भी जल नहीं प्रेम ही प्रवाहित हो रहा है, पर्वत के रूप में भी पाषाण नहीं प्रेम का घनीभूत रूप स्थित है, वायु के रूप में भी प्रेम का ही स्पर्श प्राप्त होता है। वृक्षों के रूप में भी जाड्य प्रेम का ही दर्शन होता है, हिरणियों की चितवन में टपकता प्रेम और कोकिलाओं की कूक, भ्रमरों की गुंजार एवं राजहंसों के क्वणन में भी "प्रेम का रव" ही सुनाई पड़ता है; कहाँ तक कहें, मयूरों के नृत्य में तो साक्षात् प्रेम ही नृत्य करता दिखायी देता है फिर ये तो कन्हैया के सखा हैं जो प्रेम का मूर्तिमंत स्वरूप हैं। द्वारकेश लाल जी की वाणी में –

अष्ट सखा नंदलाल के सकल कला अवतार।
इनके पद वन्दन करत, बाढत प्रेम अपार॥
वन्दौ सखा सनेह सब ब्रज सखा समाज।
अब वनमालही देहुवरपरसन श्री ब्रजराज॥
सूरदास सो कृष्ण तोक परमानन्द जानो।
कृष्णदास सो रिशभ, छीतस्वामी सुबल बखानौ॥
अर्जुन कुम्भनदास, चतुर्भुज दास विशाला।
नन्ददास सो भोज स्वामी गोविन्द श्री दामा॥
अष्टछाप आठौ सखा द्वारकेश परमान।
जिनके कृत गुणगान करि होत सुजीवन धाम॥

'ग्रन्थ रसीली ब्रजयात्रा भाग-२' में नित्य सखा परिकर की वाणी का आश्रय लिया गया है, जो प्रकटकाल में "अष्टसखा" के रूप में अपने-अपने विलक्षण कवित्व कौशल से अष्टछाप के सुकवि भी कहलाये। श्रीपुष्टि सम्प्रदाय में अष्टछाप के इन महापुरुषों का भावात्मक स्वरूप कुछ इस प्रकार है –

कवि	सखा सखी	श्रीअंग श्रृंगार	लीला दर्शन	स्वरूप	निवास	गिरिराज द्वार	ब्रह्मसम्बन्ध
सूरदास	कृष्ण चम्पक लता	मुख पाग	मान उत्थापन	मथुरेश जी	चंद्रसरोवर सघन कन्दरा	६	महाप्रभु जी
परमानन्ददास	तोक चंद्रभागा	श्रवण पाग	बाल मंगला	बालकृष्ण जी	सुरभि कुण्ड श्यामतमाल नीचे	१	महाप्रभु जी
कुभनदास	अर्जुन विशाखा	हृदय कुलह	कुज राजभोग	श्री नाथ जी	आन्यौर नीम वृक्ष के तले	७	महाप्रभु जी
कृष्णदास	ऋषभ ललिता	चरण मुकुट	रास शयन	मदनमोहन जी	बिलछू कुण्ड श्याम तमाल तले	४	महाप्रभु जी
चतुर्भुजदास	सुबाहु सुशीला	हस्त सेहरा	अन्नकूट भोग	गोकुलनाथ जी	रूद्र कुण्ड (आमवृक्ष के नीचे)	३	गुसाईं जी
नन्ददास	भोज इन्द्ररेखा	उदर फेंटा	रास श्रृंगार	गोकुलचंद्रमा जी	मानसी गंगा पीपल वृक्ष तले	५	गुसाईं जी

छीतस्वामी	सुबल	कटिल	जन्म	विट्ठलनाथ जी	अप्सरा कुण्ड श्याम तमाल के तले	८	गुसाईं जी
	पद्मा	दुमाला	संध्या				
गोविन्दस्वामी	श्रीदामा	नेत्र	हिंडोरा	द्वारकानाथ जी	ऐरावत कुण्ड कदमखंडी	२	गुसाईं जी
	भामा	तिवारा	ग्वाल				

'सख्यरस-लीला' सखाओं के श्रीमुख से और अधिक शोभित व प्रामाणिक होगी, अतः "अष्टसखा वाणी" के आधार पर लीलानुसार सब स्थलों का माहात्म्य स्पष्ट किया गया है। प्रामाणिकता में इसलिए संदेह नहीं है क्योंकि **"आप्त वाक्यं प्रमाणं"**। महापुरुषों की वाणी के आगे स्वबुद्धि के प्रयोग की आवश्यकता कहाँ रह जाती है।

आप्त कौन?

केवल वेद, पुराण, न्याय, व्याकरण का ज्ञाता अथवा उपाधियों से अलंकृत लब्ध-प्रतिष्ठ पुरुष आप्त नहीं हो सकता है अपितु

'रागादिवसादपि योऽनान्यथावादी स आप्तः'

(श्रीनागेशभट्ट कृत लघुमंजूषा)

जो कदापि राग-द्वेष के अधीन होकर, नित्य-सिद्ध, अनादि, अपौरुषेय वेदों के विरुद्ध कुछ न कहे, वही आप्त है। जिस रस का एक बिन्दु असंख्य ब्रह्माण्डों में रस का संचार कर देता है, जिसकी रस कणिका से सम्पूर्ण त्रिभुवन रस-सिक्त हो उठता है; ब्रजरस की उस अद्भुत स्रोतस्विनी में नित्य अवस्थित एक महापुरुष की सुदृढ़ धाम-निष्ठा के दिव्य भाव ही यहाँ शब्दबद्ध हैं, जो रसीली ब्रजयात्रा भाग -२ से संग्रहीत किये गए हैं |

****

श्रीकृष्णलीला की सर्वव्यापकता

रसीली ब्रजयात्रा भाग -२' से संग्रहीत

संकलनकर्त्री चंद्रमुखीजी, मानमन्दिर, बरसाना

रसभूमि पञ्च योजनात्मक श्रीवृन्दावन के अतिरिक्त अन्यत्र विशेषतः सीमावर्ती क्षेत्र में निकुञ्ज लीला का अनुभव कठिन है किन्तु ध्यान रहे सम्पूर्ण लीलाभूमि अवतरित है अतः सर्वत्र सभी प्रकार का रस प्रवाहित हुआ है। किसी एक निश्चित घेरे को विशेष रस का स्थल बना देना व अन्य की उपेक्षा कर देना संकीर्णता है, अपराध है।

यद् राधापदकिङ्करीकृतहृदा सम्यग्भवेद् गोचरं
ध्येयं नैव कदापि यद्धृदि विना तस्याः कृपास्पर्शतः।
यत् प्रेमामृतसिन्धुसाररसदं पापैकभाजामपि
तत् वृन्दावनदुष्प्रवेशमहिमाश्चर्यं हृदि स्फूर्जतु॥

(रा.सु.नि. २६५)

विभु की लीला भी विभु है, वह किसी धाम में तो क्या अधिकारिता हो तो कहीं भी, किसी भी हृदय में प्रकट हो सकती है। जिस हृदय में भी राधापद कैंकर्य है, उसको श्री धाम वृन्दावन के सम्यक् स्वरूप का दर्शन होता है अर्थात् ऐसा कोई अंश नहीं रहता, जिसे वह देख न सके। कृपा से ही भगवद्धाम का अवतरण होता है अतः लीला की विभुता में संकीर्ण विचारों का उद्भव अपराध है –अनेक सिद्ध सन्त-महापुरुषों द्वारा लीला धाम की विभुता अनुभूत है –

१. रसिक सम्राट श्री जयदेव स्वामी जी के लिए किन्दुबिल्व आश्रम में ही गंगा जी प्रकट हो गईं, जो जयदेई गंगा के नाम से प्रसिद्ध हुईं। (भक्तमाल छप्पय-१६३)

२. श्री हिताचार्य महाप्रभु के लिए देवबन्द (सहारनपुर) के कूप में ही रंगीलाल जी प्रकट हो गये। (भक्तमाल छप्पय-९०)

३. रसिक अनन्य श्री हरिराम व्यास जी को ओरछा में ही श्री हिताचार्य जी के कृपापात्र श्री नवल दास जी के **"आजु अति राजत दम्पति भोर"** पद गाये जाने पर दिव्यानुभव हुआ एवं श्री हिताचार्य को गुरू बनाने का निश्चय किया।

४. दाक्षिणात्य ब्राह्मण श्री रूपरसिक जी ने परम रसिक श्री हरिव्यासदेवाचार्य जी को गुरू बनाने का निश्चय

किया किन्तु दक्षिण भारत से जब श्री धाम वृन्दावन आये तो ज्ञात हुआ कि आचार्य प्रवर तो नित्य-लीला में प्रवेश कर गये हैं, यह सुनकर अपार कष्ट हुआ, प्राण त्याग का निश्चय किया, तीन दिन तक भूखे-प्यासे विश्रामघाट पर पड़े रहे। इस दृढ़ निष्ठा पर श्री हरिव्यास देवाचार्य जी ने नित्यधाम से आकर दर्शन दिया।

५. गम्भीरा लीला में श्रीमच्चैतन्य महाप्रभु का प्रेमावेश देखें। पुष्प वाटिका को ही वृन्दावन समझकर दौड़ रहे हैं। वहाँ के तरू-लता, पशु-पक्षियों से श्रीकृष्ण का मार्ग पूछ रहे हैं, मिट्टी के टीलों को गिरिराज पर्वत समझकर लिपट जाते। एक दिन तो गम्भीरा मन्दिर से दौड़कर समुद्र के नीले जल को ही यमुना समझकर कूद पड़े, सम्पूर्ण रात्रि उसी भावावेश में सागर के अगाध जल में डूबते-उछलते रहे।

६. श्री स्वामी हरिदास जी महाराज की कृपा से अकबर को श्री वृन्दावन के धीर-समीर घाट का दिव्य दर्शन प्राप्त हुआ।

७. जिस समय राजा मधुकरशाह अपने गुरुदेव श्री हरिराम व्यास जी को ओरछा ले जाने के लिए श्री धाम वृन्दावन आये तो श्री हरिराम व्यास जी ने उन्हें श्री स्वामी हरिदास जी महाराज का दर्शन कराया तब स्वामी जी ने राजा को अधिकारी जान उन्हें दिव्य रत्न, मणि-माणिक्य खचित नित्य श्री वृन्दावन का दर्शन कराया। इतना ही नहीं स्वामी जी ने राजा का भाव देखकर उन्हें आशीर्वाद दिया कि तुम्हें ओरछा में भी दिव्य वृन्दावन धाम का दर्शन प्राप्त होता रहेगा, इसके बाद तो राजा मधुकरशाह को विन्ध्याचल तक उसी दिव्य श्री वृन्दावन का दर्शन होता रहा। राजा को आज यह बोध ही नहीं विश्वास हो गया कि भगवान् की ही भाँति "धाम" भी सर्वव्यापक है और उन्होंने यह पद गाया –

हमारे श्री वृन्दावन सौ गाऊँ।

८. एक समय वृन्दावन के किसी धोबी के घर से भिक्षा ग्रहण कर लेने मात्र पर कुछ ईर्ष्यालुओं ने गुरुदेव श्री ललित मोहन देव जी से श्री भगवत रसिक जी की शिकायत की, इस पर गुरु ने उन्हें वृन्दावन छोड़ देने की आज्ञा दी, जिससे श्री भगवत रसिक जी को मन में अपार कष्ट हुआ; क्योंकि श्री धाम वृन्दावन आपके लिए मात्र रहने का स्थान नहीं था, साक्षात् इष्ट ही था। हृदय में श्री वृन्दावन धाम को धारण करके यमुना किनारे-किनारे प्रयाग पहुँच गये, अड़ैल के समीप यमुना किनारे मढ़ी में आप श्री वृन्दावन के निधिवन राज का दर्शनानन्द प्राप्त कर लेते थे, आपका तो हृदय ही वृन्दावन बन चुका था।

कालान्तर में गुरुदेव के नित्यलीलालीन होने पर कुछ सन्त आपको आचार्य गद्दी पर विराजने की प्रार्थना करने गये तब आपने यह पद गाया –

हमारौ उर वृन्दावन और।
माया-काल तहाँ नहिं व्यापै, जहाँ रसिक-सिरमौर॥
छूटि जात सत-असत बासना, मन की दौरा-दौर।
'भगवत रसिक' बतायौ श्री गुरू, अमल अलौकिक ठौर॥

श्री गुरू कृपा से हमारे तो हृदय में ही माया, काल से अतीत श्री वृन्दावन विराजित हो गया है। अब कहीं आने-जाने की आवश्यकता नहीं रही।

बहुत प्रार्थना करने पर भी मढ़ी (प्रयाग) छोड़कर नहीं गये। महाप्रयाण की बेला में स्वयं गंगा जी आईं। कैलाश चलने की प्रार्थना की। देवराज इन्द्र ने स्वर्ग चलने की किन्तु विनाशी लोकों की ओर ध्यान न देते हुए आप श्री यमुना जी के साथ सखी स्वरूप से नित्यलीला महल में प्रवेश कर गये।

आज भी मढ़ी (प्रयाग) में श्री भगवत रसिक जी महाराज का समाधि-स्थल दर्शनीय है।

मढ़ी (प्रयाग) में रहकर उन्होंने नित्य श्री वृन्दावन में प्रवेश प्राप्त किया। क्या इन सब उदाहरणों से धाम की विभुता स्पष्ट नहीं होती है?

२५२ वैष्णववार्ता में वर्णन है – भक्त श्री माधोदास क्षत्री को म्लेच्छों के देश काबुल (अफगानिस्तान की राजधानी) में ही श्री श्रीनाथ जी का नित्यप्रति दर्शन

होता था। इतना ही नहीं, सम्पूर्ण सेवा परिचर्या भी यहीं से हो जाती थी। एक समय श्री माधोदास जी अपने अचला से पंखा झला रहे थे, निकट ही बैठे श्री रूपमाधुरी जी पूछ बैठे – माधोदास जी! यहाँ तो कोई दिखाई नहीं देता है। आप पंखा किसे झल रहे हैं।

हमारे गोपाल जी गोचारण करके आये हैं, थक गये हैं अतः उन्हीं को झल रहा हूँ - श्री माधोदास जी ने कहा।

वे तो ब्रज में आये हैं, काबुल में थोड़े ही – रूप माधुरी जी ने विस्मित होकर कहा।

कहाँ काबुल और कहाँ ब्रज।

किन्तु श्री गोसांई जी की कृपा से परम वैष्णव श्री माधोदास क्षत्री को काबुल में ही नित्य गोवर्धन और गोवर्धननाथ का दर्शन हो जाता था।

यही तो है धाम की विभुता।

लीला, धाम की नित्यता, विभुता व चिन्मयता -

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

(श्रीमद्भगवद्गीताजी ४/९)

भगवान् का जन्म, लीला .....सब कुछ दिव्य है, विभु है।

गर्गसंहितानुसार श्रीराधारानी सिद्धाश्रम (द्वारिका) आई हैं। तब गोपियों की प्रार्थना पर वहाँ भी रासलीला हुई है अतः केवल वृन्दावन ही महारास अथवा श्रृंगाररस का क्षेत्र नहीं है।

धाम व लीला की विभुता का स्मरण रखें।

इन्हें सीमा में आबद्ध करना अपराध है।

भूतल पर ही चिन्मयता प्रकट है।

श्री भरत जी की चित्रकूट यात्रा में इसी भौम धाम में चिन्मयता का दर्शन प्राप्त होता है –

कुस कंटक काँकरीं कुराईं।
कटुक कठोर कुबस्तु दुराईं॥
महि मंजुल मृदु मारग कीन्हे।
बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हे॥

(रा.च.मा.अयोध्या. ३११)

तीक्ष्ण काँटे, कुश-कंकड़-कुसमावली, शिलायें-मृदुस्पर्शी पल्लव एवं कुवस्तु (मल-मूत्रादि) सुगन्धित पदार्थ के रूप में परिवर्तित हो गए।

दृश्यमान धाम में प्राकृतत्त्व की प्रतीति होती है किन्तु इसी में चिन्मय भाव द्वारा इसके वास्तविक स्वरूप की प्रतीति अवश्य होगी ।

अतः इसी भाव से धाम का सेवन करें।

गो गो-सुतन सौं, मृगी मृग-सुतन सौं, और तन नैंकु न जोहनी।

(स्वामी हरिदास रस सागर, अष्टादशसिद्धान्त के पद-१२)

"और तन नैकु न जोहनी" अर्थात् संसार की ओर तनिक भी नहीं देखना।

यहाँ की रज, वन-उपवन, हिरणी, गाय, वत्स ही निकुञ्ज -रस प्रदान करेंगे। यही रस मार्ग है, रसोपासना और रसिकता है।

श्री हिताचार्य ने भी तो यही कहा –

हित हरिवंश अनत सचु नाहीं, बिनु या रजहिं लिये।

(श्रीहित स्फुट वाणी-२०)

पृथ्वी पर स्थित होते हुए भी यह अवतरित धाम(ब्रज), नित्यधाम से भी श्रेष्ठ है, कारण ? यह माधुर्याधिक्य भूमि है। सर्वशक्तिमान प्रभु की ऐश्वर्यलीला में वह माधुर्य नहीं है किन्तु जब वे नरलीला करते हैं तो वह माधुर्य रस तुन्दिला ऐश्वर्यातिशयनी लीला बन जाती है, जिसके आगे ब्रह्मानन्द तिरस्करणीय ही नहीं, विस्मरणीय हो जाता है।

श्रीमद्भागवतजी २/१/७, ९ तथा १०/१५/१९ इसके प्रमाण हैं –

रेमे रमालालितपादपल्लवो ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः।

जिसके लिए प्रभु लक्ष्मी के मृदुकरकमलों से सेवित चरणों के सुख को त्यागकर ब्रज के कंटकों में विचरण करते हैं क्योंकि ऐश्वर्य के संगोपन (छिपाने) के बाद ही माधुर्य का उद्भव (प्रकाश) होता है। अलमति विस्तरेण, स्वयं महालक्ष्मी भी वैकुण्ठ छोड़कर इस धाम का शश्वदाश्रय लेती हैं – **श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।**

(श्रीमद्भागवतजी १०/३१/१)

प्रभु स्वयं इस माधुर्य में ऐसे निमग्न हो जाते हैं कि लक्ष्मी को भी चरणसंवाहन का कभी-कभी ही अवसर प्राप्त होता है।

यर्ह्यम्बुजाक्ष तव पादतलं रमाया दत्तक्षणं क्वचिदरण्यजनप्रियस्य। (श्रीमद्भागवतजी१०/२९/३६)

आपकी प्रियता तो ब्रज के वनवासी जनों से ही अधिक है और उन वृन्दावन की वनचरियों, भीलनियों की प्रियता भी आपसे ही है।

ऐसा क्यों हुआ?

इसके उत्तर में श्री भागवतकार को कहना पड़ा –

"इत्थम्भूतगुणो हरिः" (श्रीमद्भागवतजी१/७/१०)

अर्थात् अनिर्वचनीय है वह।

श्री स्वामी जी की वाणी में –

भूलीं सब सखी देखि देखि ।
जच्छ किन्नर नागलोक देवस्त्री, रीझि रहीं भुव लेखि लेखि॥ (श्रीकेलिमाल-४२)

यक्ष पत्नी, किन्नर पत्नी, नाग पत्नी एवं समस्त देवाङ्गनायें भुव अर्थात् पृथ्वी पर कुञ्जबिहारिणी श्री राधारानी का दर्शन करके अत्यन्त प्रसन्न हो रही हैं।

किन्तु यहाँ भुव कहने से यह भूमि प्राकृत नहीं हो जायेगी।

श्री स्वामी जी आगे एक दूसरे पद में कहते हैं –

सुनि धुनि मुरली बन बाजै हरि रास रच्यौ।
कुञ्ज कुञ्ज द्रुम बेलि प्रफुल्लित, मंडन कंचन मनिन खच्यौ॥ (श्रीकेलिमाल-५२)

यह है अवतरित धाम की चिन्मयता।

पृथ्वी पर है किन्तु प्राकृत नहीं, चिन्मय है –

श्री वृन्दावन फूलनि फूल्यौ पूरन ससि त्रिबिध पवन बहै थोरी थोरी। गति बिलास रस हास परस्पर भूतल अद्भुत जोरी॥ श्री जमुना जल बिथकित पुहुपनि बरषा रतिपति डारत त्रिन तोरी। श्रीहरिदास के स्वामी श्यामा कुञ्ज बिहारी कौ रस रसना कहै कोरी॥ (श्रीकेलिमाल-३३)

वायु भी प्रिया-प्रियतम के सुख का ध्यान करते हुए धीरे-धीरे बहती है, यमुना का जल स्थगित हो गया है, देव पुष्पवर्षा कर रहे हैं। भूतल पर प्रकट होते हुए भी अद्भुत है यह जोरी। यहाँ का चर-अचर सब कुछ चिन्मय है।

धाम चिन्मय है, विभु है किन्तु इसका अनुभव सबको नहीं। जिस प्रकार भगवान् विभु, सर्वव्यापक होते हुए भी सबके दृष्टिपथ में नहीं आते हैं, कारण **"अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शोऽहं कुयोगिनाम्"** कषाय के रहते उस सर्वगत, सर्वमय, सर्वव्यापी को देख पाना सम्भव नहीं है।

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः॥

(श्रीमद्भागवतजी २/९/३३)

प्रभु अन्तःकरण में ही विराजमान है किन्तु प्रतीति नहीं होगी। वस्तु की विद्यमत्ता में वस्तु की प्रतीति न होना व अवस्तु की अविद्यमत्ता में अवस्तु की प्रतीति होना, यही तो माया है। धाम में प्राकृतत्त्व की प्रतीति होना, वस्तु में अवस्तु की प्रतीति है।

धाम में चिन्मयता की प्रतीति न होना, वस्तु में अवस्तु की प्रतीति है। अनुपम वृन्दावन इस भूमि पर साक्षात् रूप से देदीप्यमान है। ऐसे दिव्य वृन्दावन को नेत्रवान होकर भी मानव देख व समझ नहीं पाता यही माया है ।

प्रगट जगत में जगमगै वृन्दाविपिन अनूप।
नैन अछत दीखै नहीं, यह माया को रूप॥

(श्रीध्रुवदासजी कृत बयालीस लीला)

धाम का विभु रूप यदि स्वीकार नहीं करोगे तो वह उपासकों के हृदय में कैसे स्फुरित होगा?

"यद्राधा पद किङ्किरी कृत हृदां सम्यग्भवेद् गोचरम्।" (राधासुधानिधि - २६५)

सम्यक् गोचरता अर्थात् सर्वांश में गोचरता।

विभुता स्वीकार किये बिना सम्पूर्ण लीला का स्फुरण कैसे सम्भवहै?

उसकी ध्येयता भी कैसे सम्भव है?

"ध्येयं नैव कदापि यद्हृदि विना तस्याः कृपास्पर्शतः"

(रा.सु.नि. २६५)

अतः धाम की विभुता को स्वीकार करना ही होगा।

श्री नारद जी के ध्रुव के प्रति वचन –

तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुचि।
पुण्यं मधुवनं यत्र सान्निध्यं नित्यदा हरेः॥

(श्रीमद्भागवतजी ४/८/४२)

ध्रुव ! उस मधुवन में जाओ, जहाँ श्री हरि का नित्य सान्निध्य है।

नित्य सन्निधि विभु धाम में ही सम्भव है।

धाम नित्य है, तभी सान्निध्य भी नित्य होगा।

प्राकृत वस्तु में नित्य सान्निध्य सम्भव नहीं।

स्वेच्छावतारचरितैरचिन्त्यनिजमायया।
करिष्यत्युत्तमश्लोकस्तद्ध्यायेद्धृदयङ्गमम्॥

(श्रीमद्भागवतजी ४/८/५७)

ध्रुव ! स्वेच्छा से अवतरित प्रभु की भावी लीलाओं को ध्यान करना क्योंकि सर्वव्यापक परमात्मा के जन्म, कर्म, लीला, धाम सब दिव्य हैं, विभु हैं। इस विभु ज्ञान से माया निवृत्ति हो जायेगी।

श्रीमद्वल्लभाचार्य महाप्रभु जी ने धाम की तीन विशेषताएं बताई हैं –

हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप॥

(श्रीमद्भागवतजी१०/५/१८)

(१) धाम में भगवान् का नित्य निवास है। "सान्निध्यं नित्यदा हरेः"

(२) धाम उनका स्वरूप व आत्मा है। "वनं में देहरूपकम्"

(३) धाम में भगवदीय गुण है।

जैसे – 'अहं त्वा सर्वपापेभ्यो' अथवा 'प्रणतदेहिनां पाप कर्षणम्' इत्यादि शास्त्र वाक्यों से सिद्ध है कि भगवान् में पापनाशक शक्ति है और यह शक्ति धाम में भी है क्योंकि धाम और धामी सर्वथा अभिन्न हैं।

"यत् प्रेमामृत सिन्धुसाररसदं पापैकभाजामपि"

(रा.सु.नि. २६५)

अथवा

सिय निंदक अघ ओघ नसाए।
लोक बिसोक बनाइ बसाए॥

(रा.च.मा.बाल. १६)

जैसे भगवान् का व्यापकत्व शास्त्र सिद्ध है वैसे ही धाम की विभुता भी विस्तार से वर्णित है। यथा –

"व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः"

(श्रीमद्भागवतजी ७/८/१८)

व्रजनं व्याप्तिरित्युक्त्या व्यापनाद् व्रज उच्यते॥
गुणातीतं परं ब्रह्म व्यापकं व्रज उच्यते।

(श्रीमद्भागवतजी, माहा. १/१९, २०)

अतः एक स्थान में दिखाई देने पर भी हरेर्निवासात्मगुणै के अनुसार भगवदीय गुण आ जाने से भगवद्धाम भी विभु है।

जिस प्रकार भगवान् भी सर्वदेशीय होते हुए लीलाकाल में एकदेशीय दिखाई देते हैं। कहीं यशोदा मैया उन्हें रस्सी से बाँध देती हैं तो कहीं गोपियाँ उन्हें पकड़कर नचा लेती हैं। उसी प्रकार विभु होते हुए भी प्रकट-धाम एकदेशीय दिखाई देता है।

सर्वदेशीय की एकदेशीयता –

सर्ब सर्बगत सर्ब उरालय।
बससि सदा हम कहुँ परिपालय॥

(रा.च.मा.उत्तर. ३४)

हे भगवन्! आप 'सर्वगत' अर्थात् सबमें व्याप्त हैं।

सबके हृदय रूपी घेरे में रहते हैं, हमारा पालन करिए।

भक्त हृदय में आने के लिए तो उस सर्वदेशीय को भी एकदेशीय होना पड़ेगा अन्यथा सर्वदेशीयता में रसानुभूति नहीं होगी।

सर्वदेशीयता –

भूमि सप्त सागर मेखला।
एक भूप रघुपति कोसला॥
भुअन अनेक रोम प्रति जासू।
यह प्रभुता कछु बहुत न तासू॥
सो महिमा समुझत प्रभु केरी।
यह बरनत हीनता घनेरी॥

सोउ महिमा खगेस जिन्ह जानी।
फिरि एहिं चरित तिन्हहुँ रति मानी॥

(रा.च.मा.उत्तर. २२)

जिसके रोम-रोम में अनन्तानंत ब्रह्माण्ड हैं, वह सात समुद्रों की मेखला वाली भूमि का राजा हो जाये तो कौन बड़ी बात है। बल्कि अनन्तानंत ब्रह्माण्डों के स्वामी को सप्तद्वीपमयी पृथ्वी का राजा कहने में उनकी बड़ी हीनता है किन्तु हे गरुड़ जी ! जिन्होंने उनकी उस महिमा को जान भी लिया है, उन्हें भी इस लीला में बड़ा प्रेम, आनन्द होता है।

सोउ जाने कर फल यह लीला।
कहहिं महा मुनिबर दमसीला॥

(रा.च.मा.उत्तर. २२)

उस महामहिमा के ज्ञान का एकमात्र फल इस लीला का अनुभव ही है। अर्थात् रसानुभूति तो एकदेशीयता में ही होगी। यह सिद्धान्त सर्वत्र घटित होता है अतः सभी ने स्वीकार किया है।

श्रीपादरूपगोस्वामी जी ने भी, जो प्रेम तत्त्व विभु है, उसमें विभुता के होते हुए भी रसानुभूति की दृष्टि से परिछिन्नता आदि धर्म दिखाए हैं। यथा –

विभुरपि कलयन् सदाभिवृद्धिं
गुरुरपि गौरवचर्च्चया विहीनः।
मुहुरुपचित वक्रिमापि शुद्धो
जयति मुरद्विषि राधिकानुरागः॥ (दानकेलिकौमुदी श्लोक-२)

वह विभु अर्थात् व्यापक है तो भी उसमें वृद्धि होती रहती है, यह विरोधी धर्म है। जो सबसे बड़ा है उसमें वृद्धि सम्भव ही नहीं है। यदि वह वर्धमान (बढ़ रहा) है तो इसका तात्पर्य विभु (व्यापक) नहीं है। जो श्रीराधारानी "आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका" (श्रीमद्भागवतजी माहा. २/१२) श्रीकृष्ण की भी आत्मा हैं तो भी गौरवचर्या (बड़प्पन) से सर्वथा विहीन हैं।

एक साधारण गोपी की भाँति लीला करती हैं। प्रतिक्षण वक्रिमा अर्थात् मान में रहते हुए भी जिनका प्रेम बहुत शुद्ध व सरल है। ऐसा मुर नामक दैत्य को मारने वाले मुरद्विषि (श्रीकृष्ण) और श्रीराधारानी का अनुराग है।

कहने का आशय यह है कि रसानुभूति की दृष्टि से धाम में एक देशीयता दिखाई देती है। जीव अणु है, अतः उसके लिए विभु का अनुभव अणुता से ही सम्भव है।

किसी नदी का जल भले ही बहुत दूर-दूर तक बहता हो किन्तु प्यासे को तो एक देश, एक दिशा, एक घाट पर ही जाना होगा अतः यशोदा को मुख में ब्रह्माण्ड दिखाने वाले ने भी एक देशीय होकर ही लीलाएँ कीं।

****

**नित्यधाम से श्रेष्ठ अवतरितधाम **

रसीली ब्रजयात्रा भाग -२' से संग्रहीत
संकलनकर्त्री - दीदीजी गुरुकुल की छात्रा बालसाध्वी प्रेमज्योतिजी, मानमन्दिर , बरसाना

अवतरित धाम में वे सभी लीलाएं होती हैं, जिनका नित्यधाम में प्रकाश नहीं है, जैसे – जन्म-लीला, शैशव-लीला, विवाह-लीला, परकीया-लीला .....इनके बिना लीला वैचित्री नहीं बन सकती है। लीला में विचित्रता के लिए तो –

जिन बाँधे सुर-असुर, नाग-नर, प्रबल करमकी डोरी।
सोइ अबिछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि बाँध्यो सकत न छोरी॥

(तुलसी विनयपत्रिका पद-९८)

उस अनन्त अविच्छिन्न ब्रह्म को एक गोपी यशोदा ने बाँध दिया। यह लीला की विचित्रता और माधुर्य की पराकाष्ठा है। यहाँ ऐश्वर्य शक्ति की पराजय एवं माधुर्य की विजय होती है।

यही इस भूमि की विशेषता है।

जाकी मायाबस बिरंचि सिव, नाचत पार न पायो।
करतल ताल बजाय ग्वाल-जुवतिन्ह सोइ नाच नचायो॥

(तुलसी विनय पत्रिका पद-९८)

जिसकी माया से विधि, शिव भी नाच रहे हैं और आज तक भी उसका पार न पा सके और वह यहाँ गोपियों की ताली पर नाच रहा है।

नित्यधाम में यह लीला-सुख कहाँ ?

नित्यधाम में ऐश्वर्य की प्रधानता है वहाँ माधुर्य का सुख कहाँ है क्योंकि ऐश्वर्य के प्रकाश में माधुर्य का संगोपन हो जाता है। माधुर्य का तात्पर्य –

सर्वज्ञत्वं महैश्वर्य्यमेव न तु माधुर्य्ये, माधुर्य्यं खलु तदेव- यदैश्वर्य्यविनाभूतकेवलनरलीलत्वेन मौग्ध्यमिति। (रागवर्त्म-चन्द्रिका २/३)

ऐश्वर्य रहित नरलीला में उसका मुग्ध भाव को प्राप्त हो जाना अर्थात् मूर्ख बन जाना ही माधुर्य है।

महैश्वर्यस्य द्योतने वाद्योतने च नरलीलत्वानतिक्रमो माधुर्य्यम्। (रागवर्त्म-चन्द्रिका २/३) जिन लीलाओं में ऐश्वर्य का द्योतन होता है, वे सहज अवगम्य हो जाती हैं किन्तु ऐश्वर्य के तिरोहित होने पर ये ही विधि, शिव को भी मोहोत्पन्न कर देती हैं। जैसे –

रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ॥

(श्रीमद्भागवतजी १०/३३/१७)

स्वप्रतिबिम्ब को देखकर विभ्रम हो जाना अथवा मणिस्तम्भ-लीला में स्वप्रतिबिम्ब से बात करना।

श्रीउद्धवजी के वचन –

यन्मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोगमायाबलं दर्शयता गृहीतम्।
विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणाङ्गम् ॥

(श्रीमद्भागवतजी ३/२/१२)

सभी प्रकार से मर्त्यलीला के योग्य आभूषणों को विभूष्य बना देने वाला यह श्रीभगवान् का विग्रह ऐसा था जिसे देखकर वे स्वयं विस्मित हो जाते थे।

और तो और ब्रजवासी भी मोह को प्राप्त हो गये तभी तो ब्रज में गिरिगोवर्धन-धारण लीला एक चर्चा का विषय बन गई।

और कभी-कभी श्रीकृष्ण बालरूप हो जाते हैं तो कभी अकस्मात् किशोरावस्था को प्राप्त हो जाते हैं।

बालरूप यशुमति मोहि जानें, ग्वालिन मिल सुख भोगूं।

(सूर-सागर)

अथवा

श्रीमद्राधे त्वमथ मधुरं श्रीयशोदाकुमारे
प्राप्ते कैशोरकमतिरसाद्वल्गसे साधुयोगम्।
इत्थं बाले महसि कथया नित्यलीलावयःश्री
जातावेशा प्रकटसहजा किन्नु दृश्या किशोरी ॥

(रा.सु.नि. १६८)

ये लीलाएं तर्कातीत हैं।

किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप ॥

(रा.च.मा.उत्तर. ७२)

दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय
तवात्ततनोश्चरितमहामृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः।

(श्रीमद्भागवतजी १०/८७/२१)

हे भगवन् ! आप अवतार लेकर जो लीला करते हैं, ये अमृत से भी अधिक मधुर और मादक होने से महा अमृत का सागर है, जो देवों को दुर्लभ है।

जो आत्मतत्त्व दुर्बोध था, उसका ज्ञान कराने के लिए ही यह नरावतार लिया।

नरलीला को समझना सहज है किन्तु तार्किकों के लिए तो यह भी दुर्बोध है।

भागवत धर्म की सरलता व कठिनता –

द्वादशैते विजानीमो धर्मं भागवतं भटाः।
गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यं ज्ञात्वामृतमश्नुते ॥

(श्रीमद्भागवतजी ६/३/२१)

यह धर्म विशुद्ध तो है साथ ही दुर्बोध भी है। विशुद्ध इसलिए कि इसमें कोई कूटता नहीं है, सरलता है, इसका ज्ञान सरल है और दुर्बोध इसलिए कि उतनी श्रद्धा हमारे अन्दर नहीं है। श्रद्धा के अभाव में तो चाहे जितना सरल हो, दुर्बोध ही रहेगा।

अतः भक्तमाल में "श्रद्धा ही फुलेल" कहा।

माधुर्य को समझने के लिए श्रद्धा का होना परमावश्यक है अन्यथा "ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पे नाच नचावें" श्रीकृष्ण का चुल्लू भर छाछ पर नाचना, घर-घर चोरी करना, दूध-दही के लिए गिड़गिड़ाना सब काल्पनिक प्रतीत होगा।

महादानि वृषभानु किशोरी तुव कृपावलोकन दान दै री।

तृषित लोचनि चकोर मेरे तुम बदन इन्दु किरनि पान दै री ॥
सब विधि सुघर सुजान सुन्दरी सुनि लै विनती कान दै री ।
'गोविन्द' प्रभु पिय चरन परसि कह्यो जाचक को तुव मान दै री ॥

अब यहाँ वह '**भगवान्**' चरणों में गिरकर दान माँग रहा है। थोड़े से दूध-दही के लिए गिड़गिड़ा रहा है। कौन माँग रहा है, जो अनन्त संसार को देने वाला है, लक्ष्मीपति है।

बिस्वंभर, श्रीपति, त्रिभुवनपति, बेद-बिदित यह लीख ।
बलिसों कछु न चली प्रभुता बरु है द्विज माँगी भीख ॥

(तुलसी विनय पत्रिका पद सं.९८)

वेद-पुराणों में राजा बलि के द्वार पर वामन बनकर भीख माँगने की कथा बहुत प्रसिद्ध है।

नित्यधाम में भिक्षा माँगने का लीला-सुख कहाँ!

इसीलिए तो इस भूमि के प्रेमियों ने कहा –

जो सुख लेत सदा ब्रजवासी ।
सो सुख सपनेहू नहिं पैयत, जो जन हैं वैकुण्ठ निवासी ॥
यहाँ घर-घर ह्वै रह्यौ खिलौना, जगत कहत जाको अविनासी । 'नागरिदास' विस्व ते न्यारी, लगि गइ हाथ लूट सुखरासी ॥

अथवा

कहा करों वैकुण्ठहि जाय ।
जहां नहीं वंशीवट यमुना गिरिगोवर्धन नन्द की गाय ॥
जहां नहीं यह कुञ्ज लता द्रुम मंद सुगन्ध बहत नहिं वाय ।
कोकिल हंस मोर नहिं कूजत, ताको बसिबो काहि सुहाय ॥
जहाँ नहीं वंशी धुनि बाजत कृष्ण न पुरवत अधर लगाय ।
प्रेम पुलक रोमांच न उपजत, मन वच क्रम आवत नहीं धाय ॥ जहाँ नहीं यह भुवि वृन्दावन, बाबा नन्द यशोमति माय । 'गोविन्द' प्रभु तजि नन्द सुवन को, ब्रज तजि वहाँ मेरी बसै बलाय ॥

(गोविन्द स्वामी)

यहाँ के पशु-पक्षी भी साधारण नहीं हैं।

प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन्
कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् ।
आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान्
श्रृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥ (श्रीमद्भागवतजी १०/२१/१४)

सनकादिक, शुकादि ब्रह्मर्षि रसास्वाद के लिए ब्रज में पक्षी बनकर बैठे हैं। शतककार कहते हैं ये ब्रज की गायें भी सामान्य नहीं हैं अपितु

ब्रह्मानन्दमवाप्य तीव्रतपसा सम्यक् प्रसाद्येश्वरं
गोरूपाः सकला इहोपनिषदः कृष्णे रमन्ते व्रजे ।
वृन्दारण्यतृणं तु दिव्यरसदं नित्यं चरन्त्योऽनिशं
राधाकृष्णपदाम्बुजोत्तम रसास्वादेन पूर्णाः स्थिताः ॥

(श्रीवृन्दावन महिमामृतम् १/१२)

भगवान् की ज्ञानशक्ति श्रुतियाँ ब्रह्मानंद प्राप्त करके भी जब ब्रजरस माधुरी का आस्वादन प्राप्त न कर सकीं, तब दीर्घकालिक तीव्र तप से प्रभु को प्रसन्न करके उनकी कृपाशक्ति से ब्रज में गायों के रूप में आईं और श्री राधाकृष्ण की चरणरज से अभिषिक्त वृन्दावन के दिव्य तृणों का आस्वादन कर, युगल सरकार की दिव्य रूप माधुरी का पान कर, पूर्णत्व में अवस्थित हुईं।

और कृष्णावतार का प्रयोजन ही यह है कि जिस भगवत्प्राप्ति के लिए सुदीर्घकाल से ऋषि-मुनि अपने प्राण, मन व इन्द्रियों को वश में करके दृढ़ योगाभ्यास में लगे हुए हैं, वह सहज सुलभ हो जाये, इतना ही नहीं वही प्राप्ति उन भगवद्विद्वेषियों को भी हो जाती है जो निरन्तर द्वेष से कृष्ण-चिन्तन कर रहे हैं।

निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढयोगयुजो हृदियन्मुनय
उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात् । (श्रीमद्भागवतजी १०/८७/२३)

अथवा

"बयर भाव सुमिरत मोहिं निसिचर" (रा.च.मा.लंका काण्ड.४५)

शत्रुओं ने भी भगवान् को प्राप्त किया और मुक्त हो गए।

श्रीकृष्ण के आजानुलम्बित भुजदण्ड एवं उन्नत विशाल वक्षःस्थल को देख रूपासक्त गोपियों ने काम-भाव से प्राप्त किया और दिव्य रास रस का आस्वादन दिया।

गर्गसंहितानुसार भगवान् के वरदान से सभी श्रुतियाँ ब्रज के गाँवों में गोपी रूप से आई हैं।

('रसीली ब्रजयात्रा – प्रथम खण्ड' में इसका विस्तार से वर्णन हुआ है।) रास केवल वृन्दावन में ही नहीं अपितु ब्रज के अनेक स्थलों पर हुआ है, एक समय श्रीराधारानी शीघ्रता में अञ्जन लगाना भूल गईं तब अञ्जनवन (आंजनौख) में महासखी श्रीविशाखाजी ने 'अञ्जनशिला' को प्रकट किया, उस समय पिपासावन (पिसाया) में रास हो रहा था। ब्रज का घर-घर महारास स्थल है। जब तक यह व्यापक दृष्टि नहीं होगी, संकुचित मति भेदोत्पन्न कर अपराध कराती रहेगी। **"एक में भाव, अन्यत्र अभाव न हो; यही अनन्यता है। एक में भाव अन्यत्र अभाव, यही संकीर्णता है। "** निष्ठा एक ही स्थान पर हो किन्तु अन्यत्र अभाव न हो तब तो वह अनन्यता है अन्यथा शुद्ध अपराध है।

श्रीकृष्णलीला के परम सुजान 'संशयशून्य जन'

रसीली ब्रजयात्रा भाग -२' से संग्रहीत

संकलनकर्त्री – दीदीजी गुरुकुल की छात्रा बालसाध्वी कमलकिशोरीजी, मानमन्दिर, बरसाना

असत् तर्कों से इस व्यापकता को नहीं समझा जा सकता है। ब्रज में भगवान् ने समस्त तीर्थों को निवास दिया। ब्रजवासियों ने जो-जो भी अवतार अथवा लीलाएं देखने की इच्छा की, तत्सम्बन्धित अवतार-लीलाओं को भी दिखाया एवं तीर्थयात्रा करने की इच्छा पर बद्रीनाथ, केदारनाथ आदि समस्त तीर्थों को आवाहन कर उन्हें यहाँ निवास दिया। स्वर्ग देखने की इच्छा हुई तो यहीं नन्दनवन (शेषशायी के समीप) भी दिखाया। (सप्रमाण "रसीली ब्रज यात्रा प्रथम भाग" में देखें)

इसी आधार पर आधुनिक इतिहासकारों ने भी ब्रज के अनेक उपेक्षित लीला-स्थलों का महत्त्व प्रकट कर प्रशंसनीय कार्य किया है जैसे – स्वर्ग को इन्द्रौली के रूप में ब्रज में ही स्वीकार किया है।

प्रायः राग-द्वेष से ग्रसित मनुष्य, संकीर्णताओं में पड़कर सत्य को स्वीकार करने में सकुचाता है और तर्क का सहारा लेता है किन्तु अचिन्त्य विषय भावगत होते हैं और तर्कातीत भी –

अचिन्त्या खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत् ।

(महाभारत, भीष्मपर्व ५/१२)

अथवा

स्वल्पाऽपि रुचिरेव स्याद्भक्ति तत्त्वावबोधिका ।
युक्तिस्तु केवला नैव यदस्या अप्रतिष्ठता ॥

(भक्तिरसामृतसिन्धु १, १.४५)

थोड़ी सी भी रुचि अथवा श्रद्धा से हृदय में भक्ति का आविर्भाव हो जायेगा किन्तु केवल शुष्क तर्क के आधार पर भक्तितत्व को समझना सर्वथा असम्भव है, कारण तर्क तो स्वयं अप्रतिष्ठित है अर्थात् –

यत्नेनापादितोऽप्यर्थः कुशलैरनुमातृभिः ।
अभियुक्ततरैरन्यैरन्यथैवोपपाद्यते ॥ (भ.र.सि.१, १.४६)

प्रयत्नपूर्वक सिद्ध किया जाने वाला तर्क भी उससे प्रबल तार्किक के द्वारा खण्डित हो जाता है एवं दूसरे मत की स्थापना हो जाती है फिर कोई तीसरा प्रबल तार्किक उसका भी खण्डन कर अपना मत स्थापन करता है।

"तर्क" अस्थिर रहने वाला, जिह्वा का श्रम है।

तर्काप्रतिष्ठानादपि अन्यथानुमेयमिति चेदेवमप्यनिर्मोक्षप्रसङ्गः ॥

(ब्रह्मसूत्र २/१/१२)

भगवत्तत्व अथवा भक्ति तत्व तर्क अथवा शुष्क युक्तियों का विषय नहीं है। यह तो मात्र श्रद्धा से अवगम्य है।

नैषां तर्केण मतिरापयेना प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ ।
यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि त्वादृङ्ग नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा ॥

(कठोपनिषद् १/२/९)

फिर इस ठाकुर की तो सभी लीलाएं ऐसी ही हैं।

अजन्मा होकर जन्म लेना, कालात्मा होकर समुद्र में छिपना, आत्माराम होकर १६,१०८ विवाह करना, तभी तो गरुड़, सती एवं ब्रह्मा की मति भी खिन्न हो जाती है।

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे ।जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे ॥

(रा.च.मा.अयोध्या. १२७)

इन लीलाओं से जड़ों को मोह एवं विवेकी जनों को चरितामृत में डूबने-उतराने का अवसर प्राप्त होता है।

विधि के वचन –

नाहं न यूयं यदृतां गतिं विदुर्न वामदेवः किमुतापरे सुराः ।
तन्मायया मोहितबुद्धयस्त्विदं विनिर्मितं चात्मसमं विचक्ष्महे ॥ (श्रीमद्भागवतजी २/६/३६)

उसकी गति तो स्वयं मैं (ब्रह्मा), न तुम (प्रजापति), न शिव समझ सके तब अन्य देवों की क्या चलाई? हम सब तो उनकी माया से भ्रमित होकर घूम रहे हैं।

ऋषे विदन्ति मुनयः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः ।
यदा तदेवासत्तर्कैस्तिरोधीयेत विप्लुतम् ॥ (श्रीमद्भागवतजी २/६/४०)

जिसके संदेह के संस्कार समाप्त हो चुके हैं, चित्त पूर्णरूपेण शान्त हो गया है, वह भोली श्रद्धा वाला उसे भलीभाँति समझ लेता है। क्योंकि हमारे प्रभु का स्वभाव है – (सूर-सागर)

सर्वसु देत भुराई ही सौं, चतुरन सों चतुराई ठानत ।

असत् तर्क वाला कहेगा – यह कैसे हुआ? छोटे से मुख में ब्रह्माण्ड कैसे? छोटे से नन्दग्राम में ९ लाख गाय कैसे? छोटे से चबूतरे पर रास कैसे? ये सब असत् तर्क हैं, जो श्रद्धा के अभाव में उत्पन्न होते हैं।

'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुमसमर्थः' जो सर्वसमर्थ है, उनके लिए क्या असम्भव है? एक ब्रह्माण्ड की कौन कहे, काकभुशुण्डिजी ने तो रामजी के शरीर में अनन्तानंत

ब्रह्माण्डों का दर्शन किया, प्रत्येक ब्रह्माण्ड में अयोध्या और प्रत्येक अयोध्या में रामावतार देखा।

उदर माझ सुनु अंडज राया ।देखेउँ बहुब्रह्माण्ड निकाया ॥
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका ।रचना अधिक एक ते एका ॥
अवधपुरी प्रति भुवन निनारी ।सरजू भिन्न भिन्न नर नारी ॥
प्रतिब्रह्माण्ड राम अवतारा ।देखउँ बालबिनोद अपारा ॥

(रा.च.मा.उत्तर. ८०,८१)

यह सब दैवी माया का विस्तार है, जिसका कोई पारावार नहीं है। आधुनिक विज्ञान (NASA) के अनुसार जिस आकाश गंगा में हमारी पृथ्वी स्थित है उसमें १००-४०० अरब सूर्य हैं तथा इसका व्यास लगभग १ लाख प्रकाश वर्ष है। ऐसी करोड़ों-अरबों की संख्या में आकाशगंगायें हैं। आधुनिक विज्ञान carbon dating तकनीकी के आधार पर पृथ्वी की आयु अनुमानित ४.५४ + ०.०५ अरब वर्ष की है। ऐसे ही अनन्त करोड़ों-अरबों की संख्या में ब्रह्माण्ड हैं और ऐसे-ऐसे ब्रह्माण्ड हैं जो हमारी आकाश गंगा से करोड़ों-अरबों गुना बड़े हैं। इन दूरस्थ आकाश गंगाओं के अनन्त सूर्यों का प्रकाश अभी तक इस पृथ्वी तक पहुँचा भी नहीं है। हमारा सौरमंडल अपने ग्रहों के समूह के साथ आकाश गंगा के केंद्र की ओर २२० किलोमीटर प्रति सेकेण्ड की गति से परिक्रमा कर रहा है। यदि हम २५ लाख जन्म लगातार लें तथा हर जन्म में हमारी आयु १०० वर्ष की हो तब हम अपने सौरमंडल के साथ २५ करोड़ वर्षों में अपनी आकाश गंगा की परिक्रमा कर सकेंगे। ब्रह्मा के एक दिन में, हमारा सौरमंडल अपनी आकाश गंगा की मात्र १७ परिक्रमा ही कर पाता है। हमारे शास्त्रों के अनुसार विष्णु भगवान् क्षीर सागर में शेष शय्या पर शयन करते है। NASA ने (https://goo.gl/VndwWJ) अंतरिक्ष में ऐसे विशाल समुद्र की खोज की है जो हमारी पृथ्वी के समस्त जल से १४०० खरब गुना बड़ा है। यह दैवी माया इतनी दुस्तर है कि इसका अनुमान लगाना ही हमारी बुद्धि के परे है।

इसे कोई क्या समझेगा? फिर ये सब तो अतीन्द्रिय बातें हैं और हमारी-तुम्हारी 'सीमित इन्द्रियाँ, सीमित मन, सीमित बुद्धि' जिनमें अपने ही शरीर के अन्दर झाँकने की क्षमता तो है नहीं। हड्डी टूट जाये तो आँख देख नहीं सकती। 'ऐक्सरे (X-RAY) कराओ'। बुद्धि में कोई कमी आ गयी तो सी.टी.स्कैन कराओ, शरीर की सूक्ष्म नाड़ियों की जाँच के लिए एम.आर.आई. (M.R.I.) कराओ। सीमित शक्ति रखने वाली ये मायिक इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि 'भगवान् या भगवान् की माया को' क्या समझ सकेंगी? आज से १००-२०० वर्ष पूर्व तो वायुयान में उड़ना भी मनुष्य के लिए एक कल्पना थी। जबकि श्रीमद्भागवत के प्रमाण के अनुसार देवहूतिजी की निष्काम सेवा से प्रसन्न होकर कर्दम ऋषि ने उनकी प्रसन्नता के लिए एक ऐसे दिव्य विमान की रचना की जिसका (श्रीमद्भागवतजी ३/२३/१२) से लेकर (३/२३/२१) तक विस्तृत वर्णन है। ऐसे अद्भुत वैभवशाली विमान की कल्पना, आधुनिक वैज्ञानिक और यंत्रवेत्ता (इंजीनियर) नहीं कर सकते। श्रीमद्भागवत के युगलगीत में भी वर्णन प्राप्त होता है।

जब श्रीकृष्ण वंशी बजाते हैं तो आकाश में विमानों पर सिद्धपत्नियाँ आ जाती हैं, और अपने सिद्ध पतियों के साथ में वेणु रव का आस्वादन करती हैं।

"व्योमयानवनिताः सह सिद्धैः" (श्रीमद्भागवतजी१०/३५/३)

महारासलीला में भी देवाङ्गनायें विमान पर चढ़कर दर्शन करने आती हैं और राधामाधव के ऊपर पुष्प वर्षण करती हैं।

"वैमानिकैःकुसुमवर्षिभिरीड्यमानो"

(श्रीमद्भागवतजी१०/३३/२४)

गन्धर्वगण भी अपनी स्त्रियों के साथ आकाश में विमानारूढ़ होकर भगवद्यश गा रहे हैं।

दिवौकसां सदाराणामौत्सुक्यापहृतात्मनाम्।
ततो दुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः।
जगुर्गन्धर्वपतयःसस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम् ॥

(श्रीमद्भागवतजी१०/३३/४, ५)

भगवद्इच्छा से धीरे-धीरे विकास हुआ और अब वायुयान में उड़ना कल्पना न होकर सामान्य-सी बात हो गई।

कहने का आशय है कि मायिक आँख, कान, मन, बुद्धि से भगवल्लीला को नहीं देखा जा सकता है, न समझा ही जा सकता है, इसके लिए तो पराश्रद्धा चाहिए। बिना किन्तु परन्तु किये इन्हें गाते, सुनते रहो; तब ये समझ में आ सकेंगी।